अध्याय
बारह

औपनिवेशिक शहर
नगरीकरण, नगर–योजना, स्थापत्य

इस अध्याय में हम औपनिवेशिक भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया पर चर्चा करेंगे, औपनिवेशिक शहरों की चारित्रिक विशिष्टताओं का अन्वेषण करेंगे और उनमें होने वाले सामाजिक परिवर्तनों को देखेंगे। हम तीन बड़े शहरों – मद्रास, कलकत्ता तथा बम्बई के विकासक्रम को गहनता से देखेंगे।

तीनों शहर मूलतः मत्स्य ग्रहण तथा बुनाई के गाँव थे। वे इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की व्यापारिक गतिविधियों के कारण व्यापार के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गए। कम्पनी के एजेंट 1639 में मद्रास तथा 1690 में कलकत्ता में बस गए। 1661 में बम्बई को ब्रिटेन के राजा ने कम्पनी को दे दिया गया था, जिसे उसने पुर्तगाल के शासक से अपनी पत्नी के दहेज के रूप में प्राप्त किया था। कम्पनी ने इन तीन बस्तियों में व्यापरिक तथा प्रशासनिक कार्यालय स्थापित किए।

चित्र 12.1
ओरिएंटल सीनरी, 1798 में प्रकाशित डेनियल के एक चित्र पर आधारित टॉमस तथा विलिमय डेनियल द्वारा फोर्ट सेंट जॉर्ज, मद्रास का दक्षिण–पश्चिमी अवलोकन।
माल से लदे यूरोपीय जहाज दूर क्षितिज पर अंकित हैं। अग्रभाग में मछुआरों की देसी नाव देखी जा सकती हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक ये कस्बे बड़े शहर बन गए थे जहाँ से नए शासक पूरे देश पर नियंत्रण करते थे। आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित करने तथा नए शासकों के प्रभुत्व को दर्शाने के लिए संस्थानों की स्थापना की गई। भारतीयों ने इन शहरों में राजनीतिक प्रभुत्व का नए तरीकों से अनुभव किया। मद्रास, बम्बई और कलकत्ता के नक़्शे अन्य पुराने भारतीय क़स्बों से काफी हद तक अलग थे, और इन शहरों में बनाए गए भवनों पर अपने औपनिवेशिक उद्‌भव की स्पष्ट छाप थी। इमारतें क्या अभिव्यक्त करती हैं और स्थापत्य क्या ज़ाहिर कर सकता है? इतिहास के छात्र-छात्राओं को इस सवाल पर ज़रूर सोचना चाहिए।

याद रखिए कि स्थापत्य हमारे विचारों को पत्थर, ईंट, लकड़ी या प्लास्टर के माध्यम से आकार देने में सहायक होता है। सरकारी अधिकारी के बंगले और अमीर व्यापारी के महलनुमा आवास से लेकर श्रमिक की साधारण झोपड़ी तक, भवन सामाजिक संबंधों और पहचानों को कई प्रकार से परिलक्षित करते हैं।

1. पूर्व-औपनिवेशिक काल में क़स्बे और शहर

इससे पहले कि हम औपनिवेशिक काल में शहरों के विकास का अन्वेषण करें, हमें ब्रिटिश शासन के पहले की शताब्दियों के शहरों पर नज़र डालनी चाहिए।

1.1 क़स्बों को उनका चरित्र कैसे मिला?

क़स्बों को सामान्यत: ग्रामीण इलाक़ों के विपरीत परिभाषित किया जाता था। वे विशिष्ट प्रकार की आर्थिक गतिविधियों और संस्कृतियों के प्रतिनिधि बन कर उभरे। लोग ग्रामीण अंचलों में खेती, जंगलों में संग्रहण या पशुपालन के द्वारा जीवन निर्वाह करते थे। इसके विपरीत क़स्बों में शिल्पकार, व्यापारी, प्रशासक तथा शासक रहते थे। क़स्बों का ग्रामीण जनता पर प्रभुत्व होता था और वे खेती से प्राप्त करों और अधिशेष के आधार पर फलते-फूलते थे। अकसर क़स्बों और शहरों की क़िलेबन्दी की जाती थी जो ग्रामीण क्षेत्रों से इनकी पृथकता को चिह्नित करती थी।

फिर भी क़स्बों और गाँवों के बीच की पृथकता अनिश्चित होती थी। किसान तीर्थ करने के लिए लम्बी दूरियाँ तय करते थे और क़स्बों से होकर गुज़रते थे; वे अकाल के समय क़स्बों में जमा भी हो जाते थे। इसके अतिरिक्त लोगों और माल का क़स्बों से गाँवों की ओर विपरीत गमन भी था। जब क़स्बों पर आक्रमण होते थे तो लोग अकसर ग्रामीण क्षेत्रों में शरण लेते थे। व्यापारी और फेरीवाले क़स्बों से माल गाँव ले जाकर बेचते थे, जिसके द्वारा बाज़ारों का फैलाव और उपभोग की नयी शैलियों का सृजन होता था।

स्रोत 1

ग्रामीण क्षेत्रों की ओर पलायन

1857 में ब्रिटिश सेना द्वारा शहर पर अधिकार करने के बाद दिल्ली के लोगों ने क्या किया, इसका वर्णन प्रसिद्ध शायर मिर्ज़ा ग़ालिब इस प्रकार करते हैं:

> दुश्मन को पराजित करने और भगा देने के बाद, विजेताओं (ब्रिटिश) ने सभी दिशाओं से शहर को उजाड़ दिया। जो सड़क पर मिले उन्हें काट दिया गया...। दो से तीन दिनों तक कश्मीरी गेट से चाँदनी चौक तक शहर की हर सड़क युद्धभूमि बनी रही। तीन द्वार – अजमेरी, तुर्कमान तथा दिल्ली – अभी भी विद्रोहियों के क़ब्जे में थे...। इस प्रतिशोधी आक्रोश तथा घृणा के नंगे नाच से लोगों के चेहरों का रंग उड़ गया, और बड़ी संख्या में पुरुष और महिलाएँ.. इन तीनों द्वारों से हड़बड़ा कर पलायन करने लगे। शहर के बाहर छोटे गाँवों और देवस्थलों में शरण ले अपनी वापसी के अनुकूल समय का इंतज़ार करते रहे।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में मुग़लों द्वारा बनाए गए शहर जनसंख्या के केन्द्रीकरण, अपने विशाल भवनों तथा अपनी शाही शोभा व समृद्धि के लिए प्रसिद्ध थे। आगरा, दिल्ली और लाहौर शाही प्रशासन और सत्ता के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। मनसबदार और जागीरदार जिन्हें साम्राज्य के अलग-अलग भागों में क्षेत्र दिये गए थे, सामान्यत: इन शहरों में अपने आवास रखते थे : इन सत्ता केन्द्रों में आवास एक अमीर की स्थिति और प्रतिष्ठा का संकेतक था।

इन केंद्रों में सम्राट और कुलीन वर्ग की उपस्थिति के कारण वहाँ कई प्रकार की सेवाएँ प्रदान करना आवश्यक था। शिल्पकार कुलीन वर्ग के परिवारों के लिए विशिष्ट हस्तशिल्प का उत्पादन करते थे। ग्रामीण अंचलों से शहर के बाज़ारों में निवासियों और सेना के लिए अनाज लाया जाता था। राजकोष भी शाही राजधानी में ही स्थित था। इसलिए राज्य का राजस्व भी नियमित रूप से राजधानी में आता रहता था। सम्राट एक क़िलेबन्द महल में रहता था और नगर एक दीवार से घिरा होता था जिसमें अलग-अलग द्वारों से आने-जाने पर नियंत्रण रखा जाता था। नगरों के भीतर उद्यान, मस्जिदें, मन्दिर, मक़बरे, महाविद्यालय, बाज़ार तथा कारवाँ सराय स्थिति होती थीं। नगर का ध्यान महल और मुख्य मस्जिद की ओर होता था।

दक्षिण भारत के नगरों जैसे मदुरई और काँचीपुरम् में मुख्य केन्द्र मन्दिर होता था। ये नगर महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र भी थे। धार्मिक त्योहार अकसर मेलों के साथ होते थे जिससे तीर्थ और व्यापार जुड़ जाते थे। सामान्यत: शासक धार्मिक संस्थानों का सबसे ऊँचा प्राधिकारी और मुख्य संरक्षक होता था। समाज और शहर में अन्य समूहों और वर्गों का स्थान शासक के साथ उनके संबंधों से तय होता था।

मध्यकालीन शहरों में शासक वर्ग के वर्चस्व वाली सामाजिक व्यवस्था में हरेक से अपेक्षा की जाती थी कि उसे समाज में अपना स्थान पता हो। उत्तर भारत

चित्र 12.2
शाहजहाँनाबाद, 1857
शहर के चारों और बनाई गई दिवारों को 1857 के बाद ढहा दिया गया था। लाल किला नदी के किनारे पर दिखाई दे रहा है। दायीं तरफ फासले पर रिज में आप ब्रिटिश बसावट और छावनी देख सकते हैं।

में इस व्यवस्था को बनाए रखने का कार्य कोतवाल नामक राजकीय अधिकारी का होता था जो नगर में आंतरिक मामलों पर नज़र रखता था और कानून-व्यवस्था बनाए रखता था।

1.2 अठारहवीं शताब्दी में परिवर्तन

यह सब अठारहवीं शताब्दी में बदलने लगा। राजनीतिक तथा व्यापारिक पुनर्गठन के साथ पुराने नगर पतनोन्मुख हुए और नए नगरों का विकास होने लगा। मुग़ल सत्ता के क्रमिक शरण के कारण ही उसके शासन से सम्बद्ध नगरों का अवसान हो गया। मुग़ल राजधानियों, दिल्ली और आगरा ने अपना राजनीतिक प्रभुत्व खो दिया। नयी क्षेत्रीय ताकतों का विकास क्षेत्रीय राजधानियों – लखनऊ, हैदराबाद, सेरिंगपट्म, पूना (आज का पुणे), नागपुर, बड़ौदा तथा तंजौर (आज का तंजावुर) – के बढ़ते महत्त्व में परिलक्षित हुआ। व्यापारी, प्रशासक, शिल्पकार तथा अन्य लोग पुराने मुग़ल केन्द्रों से इन नयी राजधानियों की ओर काम तथा संरक्षण की तलाश में आने लगे। नए राज्यों के बीच निरंतर लड़ाइयों का परिणाम यह था कि भाड़े के सैनिकों को भी यहाँ तैयार रोज़गार मिलता था। कुछ स्थानीय विशिष्ट लोगों तथा उत्तर भारत में मुग़ल साम्राज्य से सम्बद्ध अधिकारियों ने भी इस अवसर का उपयोग 'कस्बे' और 'गंज' जैसी नयी शहरी बस्तियों को बसाने में किया। परंतु राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के प्रभाव सब जगह एक जैसे नहीं थे। कई स्थानों पर नए सिरे से आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ीं, कुछ अन्य स्थानों पर युद्ध, लूट-पाट तथा राजनीतिक अनिश्चितता आर्थिक पतन में परिणत हुई।

व्यापार तंत्रों में परिवर्तन शहरी केन्द्रों के इतिहास में परिलक्षित हुए। यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों ने पहले, मुग़ल काल में ही विभिन्न स्थानों पर आधार स्थापित कर लिए थे : पुर्तगालियों ने 1510 में पणजी में, डचों ने 1605 में मछलीपट्नम में, अंग्रेज़ों ने मद्रास में 1639 में तथा फ्रांसीसियों ने 1673 में पांडिचेरी (आज का पुदुचेरी) में। व्यापारिक गतिविधियों में विस्तार के साथ ही इन व्यापारिक केंद्रों के आस-पास नगर विकसित होने लगे। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक स्थल-आधारित साम्राज्यों का स्थान शक्तिशाली जल-आधारित यूरोपीय साम्राज्यों ने ले लिया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, वाणिज्यवाद तथा पूँजीवाद की शक्तियाँ अब समाज के स्वरूप को परिभाषित करने लगी थीं।

मध्य-अठारहवीं शताब्दी से परिवर्तन का एक नया चरण आरंभ हुआ। जब व्यापारिक गतिविधियाँ अन्य स्थानों पर केंद्रित होने लगीं

दिल्ली का कोतवाल

क्या आप जानते हैं कि हमारे पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के दादा गंगाधर नेहरू 1857 के विद्रोह से पहले दिल्ली के कोतवाल हुआ करते थे? इस बारे में और जानकारी के लिए जवाहरलाल नेहरू की *आत्मकथा* पढ़ें।

क़स्बा ग्रामीण अंचल में एक छोटे नगर को कहा जाता है जो सामान्यतया स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति का केन्द्र होता है। *गंज* एक छोटे स्थायी बाज़ार को कहा जाता है। क़स्बा और गंज दोनों कपड़ा, फल, सब्जी तथा दूध उत्पादों से संबद्ध थे। विशिष्ट परिवारों तथा सेना के लिए सामग्री उपलब्ध कराते थे।

चित्र 12.3
नदी से गोवा शहर का एक दृश्य, जे. ग्रेग द्वारा, 1812

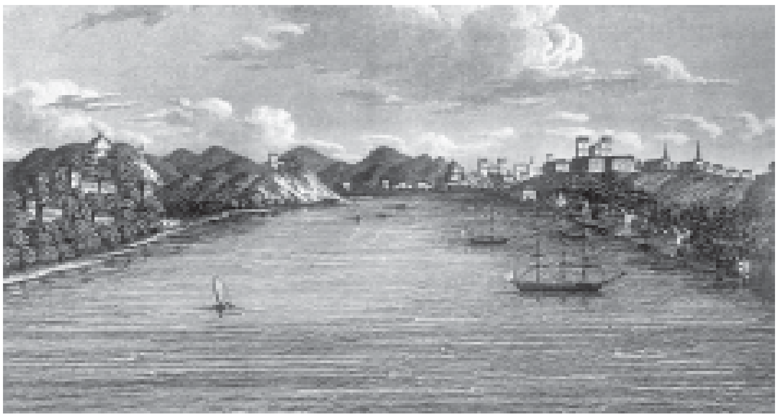

शहरों के नाम

मद्रास, बम्बई और कलकत्ता शब्द उन गाँवों के अंग्रेज़ी प्रभावित नाम हैं जहाँ अंग्रेज़ों ने सबसे पहले अपनी व्यापारिक चौकियाँ बनाई थीं। अब उन्हें चेन्नई, मुम्बई और कोलकाता कहा जाने लगा है।

➲ चर्चा कीजिए...

आप जिस क़स्बे, शहर या गाँव में रहते हैं वहाँ की कौन सी इमारत, संस्थान या स्थान सबसे ज़्यादा फ़ोकस में रहता है। उसके इतिहास की पड़ताल कीजिए, पता लगाइए कि उसका निर्माण कब किया गया, किसने किया, क्यों किया, उस इमारत के क्या उपयोग हैं और क्या उसकी उपयोगिता में कोई बदलाव आया है?

तो सत्रहवीं शताब्दी में विकसित हुए सूरत, मछलीपट्नम तथा ढाका पतनोन्मुख हो गए। 1757 में प्लासी के युद्ध के बाद जैसे-जैसे अंग्रेज़ों ने राजनीतिक नियंत्रण हासिल किया, और इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापार फैला, मद्रास, कलकत्ता तथा बम्बई जैसे औपनिवेशिक बंदरगाह शहर तेज़ी से नयी आर्थिक राजधानियों के रूप में उभरे। ये औपनिवेशिक प्रशासन और सत्ता के केन्द्र भी बन गए। नए भवनों और संस्थानों का विकास हुआ, तथा शहरी स्थानों को नए तरीकों से व्यवस्थित किया गया। नए रोज़गार विकसित हुए और लोग इन औपनिवेशिक शहरों की ओर उमड़ने लगे। लगभग 1800 तक ये जनसंख्या के लिहाज़ से भारत के विशालतम शहर बन गए थे।

2. औपनिवेशिक शहरों की पड़ताल

2.1 औपनिवेशिक रिकॉर्ड्स और शहरी इतिहास

औपनिवेशिक शासन बेहिसाब आंकड़ों और जानकारियों के संग्रह पर आधारित था। अंग्रेज़ों ने अपने व्यावसायिक मामलों को चलाने के लिए व्यापारिक गतिविधियों का विस्तृत ब्यौरा रखा था। बढ़ते शहरों में जीवन की गति और दिशा पर नज़र रखने के लिए वे नियमित रूप से सर्वेक्षण करते थे। सांख्यिकीय आँकड़े इकट्ठा करते थे और विभिन्न प्रकार की सरकारी रिपोर्टें प्रकाशित करते थे।

प्रारंभिक वर्षों से ही औपनिवेशिक सरकार ने मानचित्र तैयार करने पर ख़ास ध्यान दिया। सरकार का मानना था कि किसी जगह की बनावट और भूदृश्य को समझने के लिए नक्शे ज़रूरी होते हैं। इस जानकारी के सहारे वे इलाके पर ज़्यादा बेहतर नियंत्रण कायम कर सकते थे। जब शहर बढ़ने लगे तो न केवल उनके विकास की योजना तैयार करने के लिए बल्कि व्यवसाय को विकसित करने और अपनी सत्ता मज़बूत करने के लिए भी नक्शे बनाये जाने लगे। शहरों के नक्शों से हमें उस स्थान पर पहाड़ियों, नदियों व हरियाली का पता चलता है। ये सारी चीज़ें रक्षा संबंधी उद्देश्यों के लिए योजना तैयार करने में बहुत काम आती हैं। इसके अलावा घाटों की जगह, मकानों की सघनता और गुणवत्ता तथा सड़कों की स्थिति आदि से इलाके की व्यावसायिक संभावनाओं का पता लगाने और कराधान (टैक्स व्यवस्था) की रणनीति बनाने में मदद मिलती है।

उन्नीसवीं सदी के आख़िर से अंग्रेज़ों ने वार्षिक नगर पालिका कर वसूली के ज़रिए शहरों के रखरखाव के वास्ते पैसा इकट्ठा करने की कोशिशें शुरू कर दी थीं। टकरावों से बचने के लिए उन्होंने कुछ ज़िम्मेदारियाँ निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधियों को भी सौंपी हुई थीं। आंशिक लोक-प्रतिनिधित्व से लैस नगर निगम जैसे संस्थानों का उद्देश्य शहरों में जलापूर्ति, निकासी, सड़क निर्माण और स्वास्थ्य व्यवस्था जैसी अत्यावश्यक

सेवाएँ उपलब्ध कराना था। दूसरी तरफ़, नगर निगमों की गतिविधियों से नए तरह के रिकॉर्ड्स पैदा हुए जिन्हें नगर पालिका रिकॉर्ड रूम में सँभाल कर रखा जाने लगा।

शहरों के फैलाव पर नज़र रखने के लिए नियमित रूप से लोगों की गिनती की जाती थी। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक विभिन्न क्षेत्रों में कई जगह स्थानीय स्तर पर जनगणना की जा चुकी थी। अखिल भारतीय जनगणना का पहला प्रयास 1872 में किया गया। इसके बाद, 1881 से दशकीय (हर 10 साल में होने वाली) जनगणना एक नियमित व्यवस्था बन गई। भारत में शहरीकरण का अध्ययन करने के लिए जनगणना से निकले आँकड़े एक बहुमूल्य स्रोत हैं।

जब हम इन रिपोर्टों को देखते हैं तो ऐसा लगता है कि हमारे पास ऐतिहासिक परिवर्तन को मापने के लिए ठोस जानकारी उपलब्ध है। बीमारियों से होने वाली मौतों की सारणियों का अन्तहीन सिलसिला, या उम्र, लिंग, जाति एवं व्यवसाय के अनुसार लोगों को गिनने की व्यवस्था से संख्याओं का एक विशाल भंडार मिलता है जिससे सटीकता का भ्रम पैदा हो जाता है। लेकिन इतिहासकारों ने पाया है कि ये आंकड़े भ्रामक भी हो सकते हैं। इन आंकड़ों का इस्तेमाल करने से पहले हमें इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि आंकड़े किसने इकट्ठा किए हैं, और उन्हें क्यों तथा कैसे इकट्ठा किया गया था। हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि किस चीज़ को मापा गया था और किस चीज़ को नहीं मापा गया था।

मिसाल के तौर पर, जनगणना एक ऐसा साधन थी जिसके ज़रिए आबादी के बारे में सामाजिक जानकारियों को सुगम्य आंकडों में तब्दील किया जाता था। लेकिन इस प्रक्रिया में कई भ्रम थे। जनगणना आयुक्तों ने आबादी के विभिन्न तबकों का वर्गीकरण करने के लिए अलग-अलग श्रेणियाँ बना दी थीं। कई बार यह वर्गीकरण निहायत अतार्किक होता था और लोगों की परिवर्तनशील व परस्पर काटती पहचानों को पूरी तरह नहीं पकड़ पाता था। भला ऐसे व्यक्ति को किस श्रेणी में रखा जाएगा जो कारीगर भी था और व्यापारी भी। जो आदमी अपनी ज़मीन पर खुद खेती करता है और उपज को खुद शहर ले जाता है, उसको किस श्रेणी में गिना जाएगा। उसे किसान माना जाएगा या व्यापारी?

चित्र 12.4
बम्बई का मानचित्र
"कासल" (दुर्ग) नामक गोले में घिरा हिस्सा किलाबंद आबादी का अंग था। बिंदुकित भाग में वे सात द्वीप दर्शाये गये हैं जिन्हें भूमि विकास परियोजनाओं के जरिए एक दूसरे से जोड़ दिया गया था।

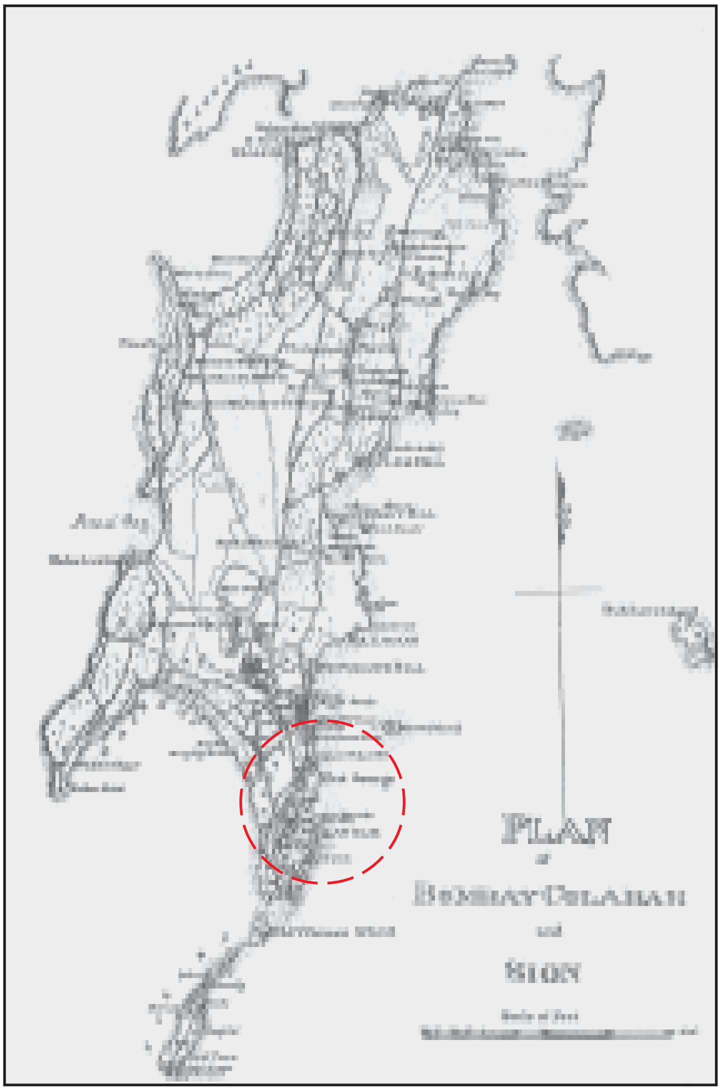

नक्शे क्या बताते हैं और क्या छिपाते हैं

सर्वेक्षण पद्धतियों के विकास, सटीक वैज्ञानिक औज़ारों और ब्रिटिश शाही ज़रूरतों की वजह से मानचित्रों को बड़ी सावधानी के साथ तैयार किया जाता था। सर्वे ऑफ़ इंडिया (भारत सर्वेक्षण) का गठन 1878 में किया गया था। उस समय तैयार किए गए नक्शों से हमें काफ़ी सारी जानकारी तो मिलती है, साथ ही अंग्रेज़ शासकों की सोच में निहित भेदभाव भी उजागर हो जाता है। मसलन, शहर में ग़रीबों की बड़ी-बड़ी बस्तियों को नक्शे पर चिह्नित ही नहीं किया गया क्योंकि शासकों के लिए उनका महत्त्व नहीं था। परिणामस्वरूप यह मान लिया गया कि नक्शे पर मौजूद ये रिक्त स्थान अन्य विकास योजनाओं के लिए उपलब्ध हैं। जब इन योजनाओं को शुरू किया गया तो वहाँ से ग़रीबों को हटा दिया गया।

बहुधा लोग खुद भी इस प्रक्रिया में मदद देने से इनकार कर देते थे या जनगणना आयुक्तों को गलत जवाब दे देते थे। काफ़ी अरसे तक वे जनगणना कार्यों को संदेह की दृष्टि से देखते रहे। लोगों को लगता था कि सरकार नए टैक्स लागू करने के लिए जाँच करवा रही है। ऊँची जाति के लोग अपने घर की औरतों के बारे में जानकारी देने से हिचकिचाते थे; महिलाओं से अपेक्षा की जाती थी कि वे घर के भीतरी हिस्से में दुनिया से कट कर रहें, उनके बारे में सार्वजनिक दृष्टि या सार्वजनिक जाँच को सही नहीं माना जाता था।

जनगणना अधिकारियों ने यह भी पाया कि बहुत सारे लोग ऐसी पहचानों का दावा करते थे जो ऊँची हैसियत की मानी जाती थीं। शहरों में ऐसे लोग भी थे जो फेरी लगाते थे या काम न होने पर मज़दूरी करने लगते थे। इस तरह के बहुत सारे लोग जनगणना कर्मचारियों के सामने खुद को अकसर व्यापारी बताते थे क्योंकि उन्हें मज़दूरी के मुकाबले व्यापार ज़्यादा सम्मानित गतिविधि लगती थी।

मृत्यु दर और बीमारियों से संबंधित आंकड़ों को इकट्ठा करना भी लगभग असंभव था। बीमार पड़ने की जानकारी भी लोग प्राय: नहीं देते थे। बहुत बार इलाज भी गैर-लाइसेंसी डॉक्टरों से करा लिया जाता था। ऐसे में बीमारी या मौत की घटनाओं का सटीक हिसाब लगाना कैसे संभव था?

कहने का मतलब यही है कि इतिहासकारों को जनगणना जैसे स्रोतों का भारी अहतियात से इस्तेमाल करना पड़ता है। उन्हें जनगणना के पीछे निहित संभावित पूर्वाग्रहों को ध्यान में रखते हुए इन संख्याओं की सावधानी से पड़ताल करनी चाहिए और यह समझना चाहिए कि ये संख्याएँ क्या नहीं बता रही हैं। मगर जनगणना और नगरपालिका जैसे संस्थानों के सर्वेक्षण मानचित्रों और रिकार्डों के सहारे औपनिवेशिक शहरों का पुराने शहरों के मुकाबले ज़्यादा विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है।

2.2 बदलाव के रुझान

जनगणनाओं का सावधानी से अध्ययन करने पर कुछ दिलचस्प रुझान सामने आते हैं। सन् 1800 के बाद हमारे देश में शहरीकरण की रफ़्तार धीमी रही। पूरी उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के पहले दो दशकों तक देश की कुल आबादी में शहरी आबादी का हिस्सा बहुत मामूली और स्थिर रहा। इसे चित्र 12.5 से समझा जा सकता है। 1900 से 1940 के बीच 40 सालों के दरमियान शहरी आबादी 10 प्रतिशत से बढ़ कर लगभग 13 प्रतिशत हो गई थी।

अपरिवर्तनशीलता के नीचे विभिन्न क्षेत्रों में शहरी विकास के रुझानों में उल्लेखनीय उतार-चढ़ाव छिपे हुए हैं। छोटे क़स्बों के पास आर्थिक रूप से विकसित होने के ज़्यादा मौके नहीं थे। दूसरी तरफ़ कलकत्ता,

बम्बई और मद्रास तेज़ी से फैले और जल्दी ही विशाल शहर बन गए। कहने का मतलब यह है कि नए व्यावसायिक एवं प्रशासनिक केंद्रों के रूप में इन तीन शहरों के पनपने के साथ-साथ कई दूसरे तत्कालीन शहर कमज़ोर भी पड़ते जा रहे थे।

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का केंद्र होने के नाते ये शहर भारतीय सूती कपड़े जैसे निर्यात उत्पादों के लिए संग्रह डिपो थे। मगर इंग्लैंड में हुई औद्योगिक क्रांति के बाद इस प्रवाह की दिशा बदल गई और इन शहरों में ब्रिटेन के कारखानों में बनी चीज़ें उतरने लगीं। भारत से तैयार माल की बजाय कच्चे माल का निर्यात होने लगा।

इस आर्थिक गतिविधि का स्वरूप ऐसा था कि उसने औपनिवेशिक शहरों को देश के परंपरागत शहरों और क़स्बों से बिलकुल अलग ला खड़ा किया।

1853 में रेलवे की शुरुआत हुई। इसने शहरों की कायापलट कर दी। आर्थिक गतिविधियों का केंद्र परंपरागत शहरों से दूर जाने लगा क्योंकि ये शहर पुराने मार्गों और नदियों के समीप थे। हरेक रेलवे स्टेशन कच्चे माल का संग्रह केंद्र और आयातित वस्तुओं का वितरण बिंदु बन गया। उदाहरण के लिए, गंगा के किनारे स्थित मिर्ज़ापुर दक्कन से कपास तथा सूती वस्तुओं के संग्रह का केंद्र था जो बम्बई तक जाने वाली रेलवे लाइन के अस्तित्व में आने के बाद अपनी पहचान खोने लगा था (देखें अध्याय 10, चित्र 10.18)। रेलवे नेटवर्क के विस्तार के बाद रेलवे वर्कशॉप्स और रेलवे कालोनियों की भी स्थापना शुरू हो गई। जमालपुर, वॉल्टेयर और बरेली जैसे रेलवे नगर अस्तित्व में आए।

चित्र 12.5

भारत में शहरीकरण
1881-1942

साल	कुल आबादी में शहरी आबादी का प्रतिशत
1891	9.4
1901	10.0
1911	9.4
1921	10.2
1931	11.1
1941	12.8

➲ चर्चा कीजिए...

जनगणना के अलावा ऐसी दो विधियाँ बताइए जिनके माध्यम से आधुनिक शहरों में आंकड़े इकट्ठा करने और उनको संकलित करने का काम अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन चुका है। सांख्यिकीय आंकड़ों या शहर के नक़्शों में से किसी एक का अध्ययन कीजिए। पता लगाइए कि ये आंकड़े किसने और क्यों इकट्ठा किए? इस तरह के संग्रह में कौन से संभावित भेद-भाव छिपे हो सकते हैं? कौन सी जानकारियाँ थीं जिनको दर्ज नहीं किया गया? यह पता लगाइए कि वे नक़्शे क्यों बनाए गए और क्या उनमें शहर के सभी भागों को समान बारीकी से चिह्नित किया गया है?

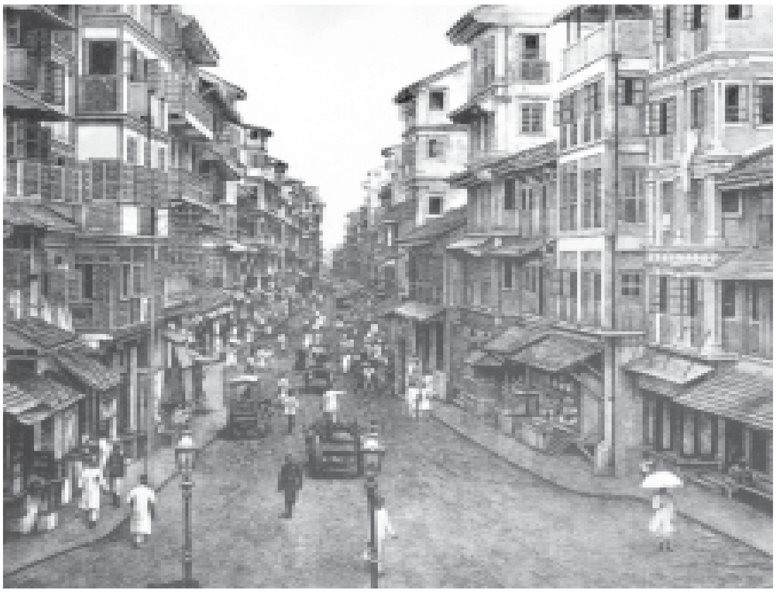

चित्र 12.6
फोर्ट एरिया का बोरा बाज़ार, 1885
जैसे-जैसे बम्बई फैली, फोर्ट एरिया में भी भीड़ बढ़ने लगी। व्यापारी, दुकादार और नौकरीपेशा लोग इस इलाके में आने लगे। बहुत सारे नए बाज़ार खुले और बड़ी-बड़ी इमारतें बनने लगीं। इसके भीड़-भड़ाके से चिंतित अंग्रेज़ों ने फोर्ट के उत्तरी इलाके से भारतीयों को खदेड़ने की कोशिशें शुरू कर दीं।

3. नए शहर कैसे थे?

3.1 बंदरगाह, क़िले और सेवाओं के केंद्र

चित्र 12.7
कलकत्ता में ओल्ड .फ़ोर्ट घाट, टॉमस एवं विलियम डेनियल का उत्कीर्ण चित्र, 1787
ओल्ड फ़ोर्ट पानी के किनारे बनाया गया था। कंपनी का माल यहीं उतारा जाता था। स्थानीय लोग यहाँ नहाने-धोने के लिए आते थे।

अठारहवीं सदी तक मद्रास, कलकत्ता और बम्बई महत्वपूर्ण बंदरगाह बन चुके थे। यहाँ जो आबादियाँ बसीं वे चीज़ों के संग्रह के लिए काफ़ी उपयोगी साबित हुईं। ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने कारख़ाने (यानी वाणिज्यिक कार्यालय) इन्हीं बस्तियों में बनाए और यूरोपीय कंपनियों के बीच प्रतिस्पर्धा के कारण सुरक्षा के उद्देश्य से इन बस्तियों की किलेबंदी कर दी। मद्रास में फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज, कलकत्ता में फ़ोर्ट विलियम और बम्बई में फ़ोर्ट, ये इलाके ब्रिटिश आबादी के रूप में जाने जाते थे। यूरोपीय व्यापारियों के साथ लेन-देन चलाने वाले भारतीय व्यापारी, कारीगर और कामगार इन क़िलों के बाहर अलग बस्तियों में रहते थे। यूरोपीयों और भारतीयों के लिए शुरू से ही अलग क्वार्टर बनाए गये थे। उस समय के लेखन में उन्हें "व्हाइट टाउन" (गोरा शहर) और "ब्लैक टाउन" (काला शहर) के नाम से उद्धृत किया जाता था। राजनीतिक सत्ता अंग्रेज़ों के हाथ में आ जाने के बाद यह नस्ली फ़र्क़ और भी तीखा हो गया।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में रेलवे के फैलते नेटवर्क ने इन शहरों को शेष भारत से जोड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि जहाँ से कच्चा माल और मज़दूर आते थे, ऐसे देहाती और दूर-दराज़ इलाक़े भी इन बंदरगाह शहरों से गहरे तौर पर जुड़ने लगे। क्योंकि कच्चा माल निर्यात के लिए इन शहरों में आता था और सस्ते श्रम की कोई कमी नहीं थी इसलिए वहाँ कारखानें लगाना आसान था। 1850 के दशक के बाद भारतीय व्यापारियों और उद्यमियों ने बम्बई में सूती कपड़ा मिलें लगाईं। कलकत्ता के बाहरी इलाक़े में यूरोपीयों के स्वामित्व वाली जूट मिलें खोली गईं। यह भारत में आधुनिक औद्योगिक विकास की शुरुआत थी।

हालाँकि कलकत्ता, बम्बई और मद्रास इंग्लिश कारख़ानों के लिए कच्चा माल भेजते थे और पूँजीवाद जैसी आधुनिक आर्थिक ताकतों के बल पर मज़बूती से सामने आ चुके थे लेकिन उनकी अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से फ़ैक्ट्री उत्पादन पर आधारित नहीं थी। इन शहरों की ज़्यादातर कामकाजी आबादी उस श्रेणी में आती थी जिसे अर्थशास्त्री तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector) या सेवा क्षेत्र कहते हैं। उस समय यहाँ सही मायनों

में केवल दो "औद्योगिक शहर" थे। एक कानपुर और दूसरा जमशेदपुर। कानपुर में चमड़े की चीज़ें, ऊनी और सूती कपड़े बनते थे जबकि जमशेदपुर स्टील उत्पादन के लिए विख्यात था। भारत कभी भी एक आधुनिक औद्योगिक देश नहीं बन पाया क्योंकि पक्षपातपूर्ण औपनिवेशिक नीतियों ने हमारे औद्योगिक विकास को आगे नहीं बढ़ने दिया। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास बड़े शहर तो बने लेकिन इससे औपनिवेशिक भारत की समूची अर्थव्यवस्था में कोई नाटकीय इजाफ़ा नहीं हुआ।

➲ चित्र 12.8 तथा 12.9 को देखिए। सड़कों पर होने वाली उन गतिविधियों पर ध्यान दीजिए जिन्हें डेनियल बंधु चित्र में दर्शाना चाहते हैं। इन गतिविधियों से अठारहवीं सदी के आख़िर में कलकत्ता की सड़कों के सामाजिक जीवन के बारे में क्या पता चलता है?

3.2 एक नया शहरी परिवेश

औपनिवेशिक शहर नए शासकों की वाणिज्यिक संस्कृति को प्रतिबिम्बित करते थे। राजनीतिक सत्ता और संरक्षण भारतीय शासकों के स्थान पर ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारियों के हाथ में जाने लगा। दुभाषिए, बिचौलिए, व्यापारी और माल आपूर्तिकर्ता के रूप में काम करने वाले भारतीयों का भी इन नए शहरों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान था। नदी या समुद्र के किनारे आर्थिक गतिविधियों से गोदियों और घाटियों का विकास हुआ। समुद्र किनारे गोदाम, वाणिज्यिक कार्यालय, जहाज़रानी उद्योग के लिए बीमा एजेंसियाँ, यातायात डिपो और बैंकिंग संस्थानों की स्थापना होने लगी। कंपनी के मुख्य प्रशासकीय कार्यालय समुद्र तट से दूर बनाए गए। कलकत्ता में स्थित राइटर्स बिल्डिंग इसी तरह का एक दफ़्तर हुआ करती थी। यहाँ "राइटर्स" का आशय क्लर्कों से था। यह ब्रिटिश शासन में नौकरशाही के बढ़ते कद का संकेत था। क़िले की चारदिवारी के आस-पास यूरोपीय व्यापारियों और एजेंटों ने यूरोपीय शैली के महलनुमा मकान बना लिए थे। कुछ ने शहर की सीमा से सटे उपशहरी (Suburb, मुफ़स्सिल) इलाक़ों में बग़ीचा घर (Garden House) बना लिए थे। शासक वर्ग के लिए नस्ली विभेद पर आधारित क्लब, रेसकोर्स और रंगमंच भी बनाए गए।

चित्र 12.8
दि ओल्ड कोर्ट हाउस और राइटर्स बिल्डिंग, टॉमस एवं विलियम डेनियल, 1786
दाएँ हाथ पर कोर्ट हाउस (न्यायालय परिसर) के खुले तोरणपथ वाले बरामदे और लंबे खम्भों को 1792 में ढहा दिया गया था। इसके बगल में राइटर्स बिल्डिंग खड़ी है जहाँ ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी (जिन्हें भारत में आने पर राइटर्स कहा जाता था) रहते थे। बाद में यह इमारत सरकारी कार्यालय बना दी गई।

चित्र 12.9
चौरंगी में नयी इमारतें, टॉमस एवं विलियम डेनियल, 1787
मैदान के पूर्वी किनारे पर अंग्रेज़ों के निजी मकान अठारहवीं सदी के आखिर में बनने लगे थे। इनमें से ज़्यादातर मकान पल्लडियन शैली के थे जिनमें गर्मियों से बचने के लिए खम्भों के सहारे बड़े बरामदे बनाए गए थे।

चित्र 12.10
द *मार्बल पैलेस (संगमरमर महल)*, कलकत्ता
यह नए शहरी संभ्रांत वर्ग के किसी भारतीय परिवार द्वारा बनवाई गई सबसे भव्य इमारतों में से एक थी।

अमीर भारतीय एजेंटों और बिचौलियों ने बाज़ारों के आस-पास ब्लैक टाउन में परंपरागत ढंग के दालानी मकान बनवाए। उन्होंने भविष्य में पैसा लगाने के लिए शहर के भीतर बड़ी-बड़ी ज़मीनें भी ख़रीद ली थीं। अपने अंग्रेज़ स्वामियों को प्रभावित करने के लिए वे त्योहारों के समय रंगीन दावतों का आयोजन करते थे। समाज में अपनी हैसियत साबित करने के लिए उन्होंने मंदिर भी बनवाए। मज़दूर वर्ग के लोग अपने यूरोपीय और भारतीय स्वामियों के लिए ख़ानसामा, पालकीवाहक, गाड़ीवान, चौकीदार, पोर्टर और निर्माण व गोदी मज़दूर के रूप में विभिन्न सेवाएँ उपलब्ध कराते थे। वे शहर के विभिन्न इलाक़ों में कच्ची झोंपड़ियों में रहते थे।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में औपनिवेशिक शहर का स्वरूप और भी बदल गया। 1857 के विद्रोह के बाद भारत में अंग्रेज़ों का रवैया विद्रोह की लगातार आशंका से तय होने लगा था। उनको लगता था कि शहरों की और अच्छी तरह हिफ़ाज़त करना ज़रूरी है और अंग्रेज़ों को "देशियों" (Natives) के ख़तरे से दूर, ज़्यादा सुरक्षित व पृथक बस्तियों में रहना चाहिए। पुराने क़स्बों के इर्द-गिर्द चरागाहों और खेतों को साफ़ कर दिया गया। "सिविल लाइन्स" के नाम से नए शहरी इलाक़े विकसित किए गए। सिविल लाइन्स में केवल गोरों को बसाया गया। छावनियों को भी सुरक्षित स्थानों के रूप में विकसित किया गया। छावनियों में यूरोपीय कमान के अंतर्गत भारतीय सैनिक तैनात किए जाते थे। ये इलाक़े मुख्य शहर से अलग लेकिन जुड़े हुए होते थे। चौड़ी सड़कों, बड़े बगीचों में बने बंगलों, बैरकों, परेड मैदान और चर्च आदि से लैस ये छावनियाँ यूरोपीय लोगों के लिए एक सुरक्षित आश्रय स्थल

चित्र 12.11
चितपुर बाज़ार, चार्ल्स डी. ऑइली द्वारा
चितपुर बाज़ार कलकत्ता में ब्लैक टाउन और व्हाइट टाउन की सीमा पर स्थित था। यहाँ विभिन्न प्रकार के मकानों को देखिए : एक तरफ अमीर ज़मींदार की ईंटों से बनी इमारत है और दूसरी तरफ फूँस से बनी गरीबों की झोंपड़ियाँ हैं। तसवीर में दिखाई दे रहे मंदिर को अंग्रेज़ ब्लैक पगोडा कहते थे जिसका यहाँ रहने वाले गोविन्द राम मित्तर नामक ज़मींदार ने निर्माण कराया था। नस्ल पर आधारित भाषा के चलते नाम भी अकसर स्याही में रँगे होते थे।

तो थीं ही, भारतीय क़स्बों की घनी और बेतरतीब बसावट के विपरीत व्यवस्थित शहरी जीवन का एक नमूना भी थीं। अंग्रेज़ों की नज़र में

काले इलाक़े न केवल अराजकता और हो-हल्ले का केंद्र थे, वे गंदगी और बीमारी का स्रोत भी थे। काफ़ी समय तक अंग्रेज़ों की दिलचस्पी गोरों की आबादी में सफ़ाई और स्वच्छता बनाए रखने तक ही सीमित थी लेकिन जब हैज़ा और प्लेग जैसी महामारियाँ फैलीं और हज़ारों लोग मारे गये तो औपनिवेशिक अफ़सरों को स्वच्छता व सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए ज़्यादा कड़े क़दम उठाने की ज़रूरत महसूस हुई। उनको भय था कि कहीं ये बीमारियाँ ब्लैक टाउन से व्हाइट टाउन में भी न फैल जाएँ। 1860-70 के दशकों से साफ़-सफ़ाई के बारे में कड़े प्रशासकीय उपाय लागू किए गये और भारतीय शहरों में निर्माण गतिविधियों पर अंकुश लगाया गया। लगभग इसी समय भूमिगत पाइप आधारित जलापूर्ति, निकासी और नाली व्यवस्था भी निर्मित की गई। इस प्रकार भारतीय शहरों को नियमित व नियंत्रित करने के लिए स्वच्छता निगरानी भी एक अहम तरीका बन गया।

3.3 पहला हिल स्टेशन

छावनियों की तरह हिल स्टेशन (पर्वतीय सैरगाह) भी औपनिवेशिक शहरी विकास का एक ख़ास पहलू थी। हिल स्टेशनों की स्थापना और बसावट का संबंध सबसे पहले ब्रिटिश सेना की ज़रूरतों से था। सिमला (वर्तमान शिमला) की स्थापना गुरखा युद्ध (1815-1816) के दौरान की गई। अंग्रेज़-मराठा (1818) युद्ध के कारण अंग्रेज़ों की दिलचस्पी माउंट आबू में बनी जबकि दार्जीलिंग को 1835 में सिक्किम के राजाओं से छीना गया था। ये हिल स्टेशन फ़ौजियों को ठहराने, सरहद की चौकसी करने और दुश्मन के ख़िलाफ़ हमला बोलने के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान थे।

चित्र 12.12
शिमला के एक औपनिवेशिक मकान का चित्र
यह सर जॉन मार्शल का आवास था।

भारतीय पहाड़ों की मृदु और ठंडी जलवायु को फायदे की चीज़ माना जाता था, ख़ासतौर से इसलिए कि अंग्रेज़ गर्म मौसम को बीमारियाँ पैदा करने वाला मानते थे। उन्हें गर्मियों के कारण हैज़ा और मलेरिया की सबसे ज़्यादा आंशका रहती थी। वे फ़ौजियों को इन बीमारियों से दूर रखने की पूरी कोशिश करते थे। सेना की भारी-भरकम मौजूदगी के कारण ये स्थान पहाड़ियों में एक नयी तरह की छावनी बन गये। इन हिल स्टेशनों को सेनेटोरियम के रूप में भी विकसित किया गया था। सिपाहियों को यहाँ विश्राम करने और इलाज कराने के लिए भेजा जाता था।

क्योंकि हिल स्टेशनों की जलवायु यूरोप की ठंडी जलवायु से मिलती-जुलती थी इसलिए नये शासकों को वहाँ की आबो-हवा काफ़ी लुभाती थी। वायसराय अपने पूरे अमले के साथ हर साल गर्मियों में हिल स्टेशनों पर ही डेरा डाल लिया करते थे। 1864 में वायसराय जॉन लॉरेंस ने अधिकृत रूप से अपनी काउंसिल शिमला में स्थानांतरित कर दी और इस तरह गर्म मौसम में राजधानियाँ बदलने के सिलसिले पर विराम लगा दिया। शिमला भारतीय सेना के कमांडर इन चीफ़ (प्रधान सेनापति) का भी अधिकृत आवास बन गया।

हिल स्टेशन ऐसे अंग्रेज़ों और यूरोपीयनों के लिए भी आदर्श स्थान थे जो अपने घर जैसी मिलती-जुलती बस्तियाँ बसाना चाहते थे। उनकी इमारतें यूरोपीय शैली की होती थीं। अलग-अलग मकानों के बाद एक-दूसरे से कटे विला और बागों के बीच में स्थित कॉटेज बनाए जाते थे। एंग्लिकन चर्च और शैक्षणिक संस्थान आंग्ल आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते थे। सामाजिक दावत, चाय, बैठक, पिकनिक, रात्रिभोज, मेले, रेस और रंगमंच जैसी घटनाओं के रूप में यूरोपीयों का सामाजिक जीवन भी एक ख़ास क़िस्म का था।

चित्र 12.13
मनाली, हिमाचल प्रदेश का एक गाँव
यद्यपि अंग्रेज़ों ने पहाड़ों में भी औपनिवेशिक स्थापत्य शैलियों का इस्तेमाल किया लेकिन स्थानीय लोग पहले की तरह ही रहते रहे।

रेलवे के आने से ये पर्वतीय सैरगाहें बहुत तरह के लोगों की पहुँच में आ गईं। अब भारतीय भी वहाँ जाने लगे। उच्च और मध्यवर्गीय लोग, महाराजा, वकील और व्यापारी सैर-सपाटे के लिए इन स्थानों पर जाने लगे। वहाँ उन्हें शासक यूरोपीय अभिजन के निकट होने का संतोष मिलता था।

हिल स्टेशन औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के लिए भी महत्त्वपूर्ण थे। पास के हुए इलाक़ों में चाय और कॉफ़ी बगानों की स्थापना से मैदानी इलाक़ों से बड़ी संख्या में मज़दूर वहाँ आने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि अब हिल स्टेशन केवल यूरोपीय लोगों की ही सैरगाह नहीं रह गए थे।

3.4 नए शहरों में सामाजिक जीवन

साधारण भारतीय आबादी के लिए नए शहर दाँतों तले उँगली दबा लेने का अनुभव थे जहाँ ज़िंदगी हमेशा दौड़ती-भागती सी दिखाई देती थी। वहाँ चरम संपन्नता और गहन ग़रीबी, दोनों के दर्शन एक साथ होते थे।

घोड़ागाड़ी जैसे नए यातायात साधन और बाद में ट्रामों और बसों के आने से यह हुआ कि अब लोग शहर के केंद्र से दूर जाकर भी बस सकते थे। समय के साथ काम की जगह और रहने की जगह, दोनों एक-दूसरे से अलग होते गए। घर से दफ़्तर या फ़ैक्ट्री जाना एक नए क़िस्म का अनुभव बन गया।

यद्यपि अब पुराने शहरों में मौजूद सामंजस्य और वाकफ़ियत का अहसास ग़ायब था लेकिन टाउन हॉल, सार्वजनिक पार्क, रंगशालाओं और बीसवीं सदी में सिनेमा हॉलों जैसे सार्वजनिक स्थानों के बनने से शहरों में लोगों को मिलने-जुलने की उत्तेजक नयी जगह और अवसर मिलने लगे थे। शहरों में नए सामाजिक समूह बने तथा लोगों की पुरानी पहचानें महत्त्वपूर्ण नहीं रहीं। तमाम वर्गों के लोग बड़े शहरों में आने लगे। क्लर्कों, शिक्षकों, वकीलों, डॉक्टरों, इंजीनियरों, अकाउंटेंट्स की माँग बढ़ती जा रही थी। नतीजा, "मध्यवर्ग" बढ़ता गया। उनके पास स्कूल, कॉलेज और लाइब्रेरी जैसे नए शिक्षा संस्थानों तक अच्छी पहुँच थी। शिक्षित होने के नाते वे समाज और सरकार के बारे में अख़बारों, पत्रिकाओं और सार्वजनिक सभाओं में अपनी राय व्यक्त कर सकते थे। बहस और चर्चा का एक नया सार्वजनिक दायरा पैदा हुआ। सामाजिक रीति-रिवाज, क़ायदे-कानून और तौर-तरीकों पर सवाल उठने लगे।

लेकिन बहुत सारे सामाजिक बदलाव स्वाभाविक रूप से या आसानी से नहीं आ रहे थे। शहरों में औरतों के लिए नए अवसर थे। पत्र-पत्रिकाओं, आत्मकथाओं और पुस्तकों के माध्यम से मध्यवर्गीय औरतें ख़ुद को अभिव्यक्त करने का प्रयास कर रही थीं। परंपरागत पितृसत्तात्मक कायदे-कानूनों को बदलने की इन कोशिशों से बहुत सारे लोगों को असंतोष था। रूढ़िवादियों को भय था कि अगर औरतें पढ़-लिख गईं तो वे दुनिया को उलट कर रख देंगी और पूरी सामाजिक व्यवस्था का आधार ख़तरे में पड़ जाएगा। यहाँ तक कि महिलाओं की शिक्षा का समर्थन करने वाले सुधारक भी औरतों को माँ और पत्नी की परंपरागत भूमिकाओं में ही देखते थे और चाहते थे कि वे घर की चारदीवारी के भीतर ही रहें। समय बीतने के साथ सार्वजनिक स्थानों पर महिलाओं की उपस्थिति बढ़ने लगी। वे नौकरानी और फ़ैक्ट्री मज़दूर, शिक्षिका, रंगकर्मी

चित्र 12.14
कलकत्ता में एक सड़क पर चलती ट्राम गाड़ियाँ।

आमार कथा (मेरी कहानी)

विनोदिनी दासी (1863-1941) बंगाली रंगमच में उन्नीसवीं सदी के आखिर और बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों की जानी-मानी हस्ती थीं। उन्होंने नाटककार और निर्देशक गिरिश चंद्र घोष (1844-1912) के साथ काफ़ी काम किया। स्टार थिएटर, कलकत्ता की स्थापना (1883) के पीछे उनका मुख्य हाथ था। यह थिएटर बाद में कई प्रसिद्ध नाटकों के लिए जाना गया। 1910 से 1913 के बीच उन्होंने *आमार कथा* के नाम से क़िस्तों में अपनी आत्मकथा लिखी। वह एक ज़बरदस्त व्यक्तित्व वाली महिला थीं। उन्होंने समाज में औरतों की समस्याओं पर केंद्रित कई भूमिकाएँ निभाईं। वह अभिनेत्री, संस्था निर्माता और लेखिका, कई भूमिकाएँ एक साथ निभाती थीं लेकिन उस समय के पितृसत्तात्मक समाज ने सार्वजनिक दायरे में उनकी उपस्थिति को कभी पसंद नहीं किया।

चित्र 12.15
उन्नीसवीं सदी के आख़िर की एक कालीघट पेंटिंग।
स्त्री सत्ता के बारे में पुरुषों की बेचैनी को अकसर एक ऐसी तसवीर के ज़रिए दर्शाया जाता था जिसमें औरत एक जादूगरनी के भेष में आदमी को भेड़ बना देती है। जैसे-जैसे औरतें पढ़-लिख कर अपने घर की चारदीवारी से निकलने लगीं, लोकप्रिय तसवीरों में औरतों की ऐसी छवियाँ खूब दिखाई देने लगीं।

और फ़िल्म कलाकार के रूप में शहर के नए व्यवसायों में दाख़िल होने लगीं। लेकिन ऐसी महिलाओं को लंबे समय तक सामाजिक रूप से सम्मानित नहीं माना जाता था जो घर से निकलकर सार्वजनिक स्थानों में जा रही थीं।

शहरों में मेहनतकश ग़रीबों या कामगारों का एक नया वर्ग उभर रहा था। ग्रामीण इलाक़ों के ग़रीब रोज़गार की उम्मीद में शहरों की तरफ़ भाग रहे थे। कुछ लोगों को शहर नए अवसरों का स्रोत दिखाई देते थे। कुछ को एक भिन्न जीवनशैली का आकर्षण खींच रहा था। उनके लिए यह एक ऐसी चीज़ थी जो उन्होंने पहले कभी नहीं देखी थी। शहर में जीने की लागत पर अंकुश रखने के लिए ज़्यादातर पुरुष प्रवासी अपना परिवार गाँव में छोड़कर आते थे। शहर की ज़िंदगी एक संघर्ष थी : नौकरी पक्की नहीं थी, खाना महँगा था, रिहाइश का ख़र्चा उठाना मुश्किल था। फिर भी ग़रीबों ने वहाँ प्रायः अपनी एक अलग जीवंत शहरी संस्कृति रच ली थी। वे धार्मिक त्योहारों, तमाशों (लोक रंगमंच) और स्वांग आदि में उत्साहपूर्वक हिस्सा लेते थे जिनमें ज़्यादातर उनके भारतीय और यूरोपीय स्वामियों का मज़ाक उड़ाया जाता था।

➲ चर्चा कीजिए...

आपके निवास स्थान से सबसे नज़दीक पड़ने वाला रेलवे स्टेशन कौन सा है? पता लगाइए कि उसका निर्माण कब कराया गया और उसे माल ढुलाई के लिए बनाया गया था या सवारी यातायात के लिए?
अन्य लोगों से पूछिए कि वे उस स्टेशन के बारे में क्या जानते हैं? आप स्टेशन पर कितनी बार जाते हैं और क्यों?

स्रोत 2

मछुआरों की नज़र से

यह बीसवीं सदी की शुरुआत में जेलेपाड़ा (मछुआरों के क्वाटर), कलकत्ता के लोगों में प्रचलित एक स्वांग का हिस्सा है :

दिल-मे एक भावना से कलकत्ता-मे आया
कैसन कैसन मजा हम हिया देखने पाया
अरि-समाज, ब्रह्म-समाज, गिरजा, महजिद
एक लोटा-मे मिलता दूध, पानी, सब चीज
छोटा, बड़ा आदमी सब बाहर करके दात
झापड़ मार के बोलता है अंग्रेज़ी-मे बात।

4. पृथक्करण, नगर नियोजन और भवन निर्माण

यद्यपि मद्रास, कलकत्ता और बम्बई, तीनों औपनिवेशिक शहर पहले के भारतीय क़स्बों और शहरों से अलग थे लेकिन उनमें कुछ साझे तत्त्व थे और उनके भीतर कुछ अनूठी बातें पैदा हो चुकी थीं। इनकी जाँच करने पर औपनिवेशिक शहरों के बारे में हमारी समझ में निश्चय ही इज़ाफ़ा होगा।

4.1 मद्रास में बसावट और पृथक्करण

कंपनी ने अपनी व्यापारिक गतिविधियों का केंद्र सबसे पहले पश्चिमी तट पर सूरत के सुस्थापित बंदरगाह को बनाया था। बाद में वस्त्र उत्पादों की खोज में अंग्रेज़ व्यापारी पूर्वी तट पर जा पहुँचे। 1639 में उन्होंने मद्रासपटम में एक व्यापारिक चौकी बनाई। इस बस्ती को स्थानीय लोग चेनापट्टनम कहते थे। कंपनी ने वहाँ बसने का अधिकार स्थानीय तेलुगू सामंतों, कालाहस्ती के नायकों से ख़रीदा था जो अपने इलाक़े में व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ाना चाहते थे। फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ प्रतिद्वंद्विता (1746-63) के कारण अंग्रेज़ों को मद्रास की किलेबंदी करनी पड़ी और अपने प्रतिनिधियों को ज़्यादा राजनीतिक व प्रशासकीय ज़िम्मेदारियाँ सौंप दीं। 1761 में फ़्रांसीसियों की हार के बाद मद्रास और सुरक्षित हो गया। वह एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक शहर के रूप में विकसित होने लगा। यहाँ अंग्रेज़ों का वर्चस्व और भारतीय व्यापारियों की कमतर हैसियत साफ़ दिखाई देती थी।

फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज (सेंट जॉर्ज किला) व्हाइट टाउन का केंद्रक बन गया जहाँ ज़्यादातर यूरोपीय रहते थे। दीवारों और बुर्जों ने इसे एक ख़ास क़िस्म की घेरेबंदी का रूप दे दिया था। किले के भीतर रहने का फ़ैसला रंग और धर्म के आधार पर किया जाता था। कंपनी के लोगों को भारतीयों के साथ विवाह करने की इजाज़त नहीं थी। यूरोपीय ईसाई होने के कारण डच और पुर्तगालियों को वहाँ रहने की छूट थी। प्रशासकीय और न्यायिक व्यवस्था की संरचना भी गोरों के पक्ष में थी। संख्या की दृष्टि से कम होते हुए भी यूरोपीय लोग शासक थे और मद्रास का विकास शहर में रहने वाले मुठ्ठी भर गोरों की ज़रूरतों और सुविधाओं के हिसाब से किया जा रहा था।

ब्लैक टाउन क़िले के बाहर विकसित हुआ। इस आबादी को भी सीधी कतारों में बसाया गया था जोकि औपनिवेशिक शहरों की विशिष्टता थी। लेकिन अठारहवीं सदी के पहले दशक के मध्य में उसे ढहा दिया गया ताकि किले के चारों तरफ़ एक सुरक्षा क्षेत्र बनाया जा सके। इसके बाद उत्तर की दिशा में दूर जाकर एक नया ब्लैक टाउन बसाया गया। इस बस्ती में बुनकरों, कारीगरों, बिचौलियों और दुभाषियों को रखा गया था जो कंपनी के व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

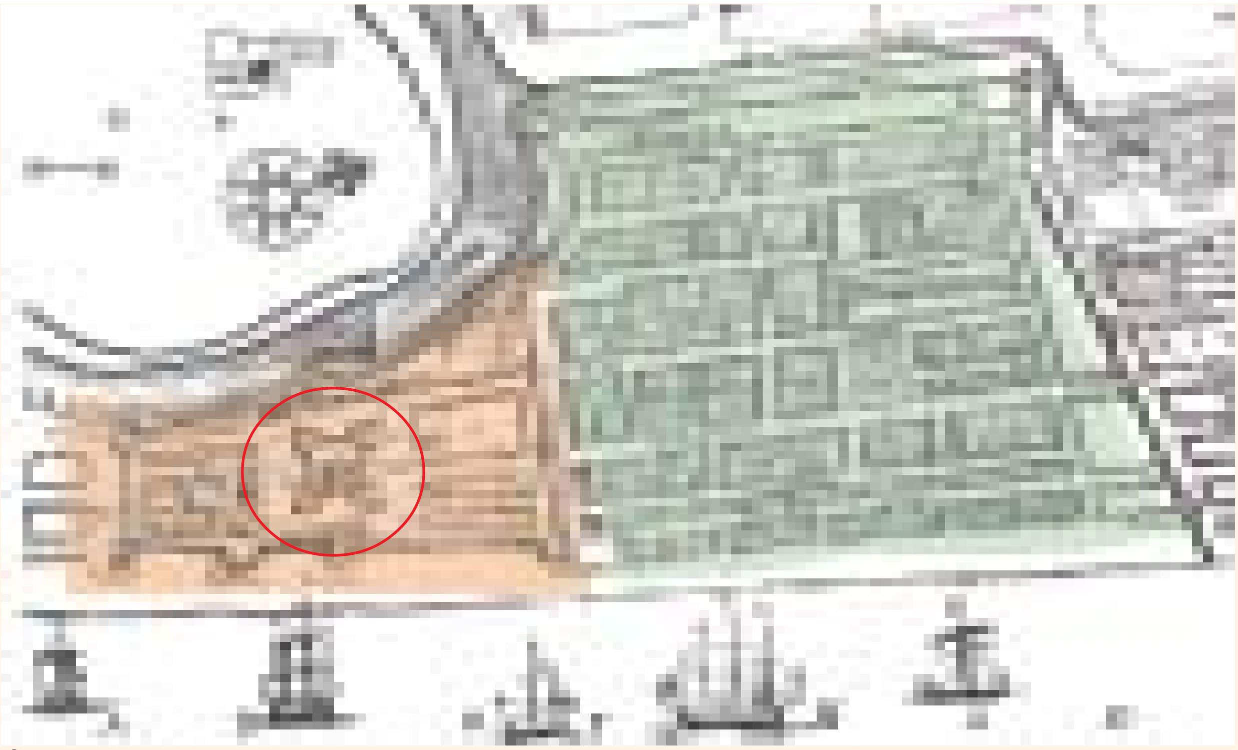

चित्र 12.16
मद्रास का नक़्शा
फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज के इर्द–गिर्द बना व्हाइट टाउन बाएँ सिरे पर तथा पुराना ब्लैक टाउन दाहिने सिरे पर है। फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज घेरे में स्थित है। ध्यान से देखिए कि ब्लैक टाउन को किस तरह बसाया गया था।

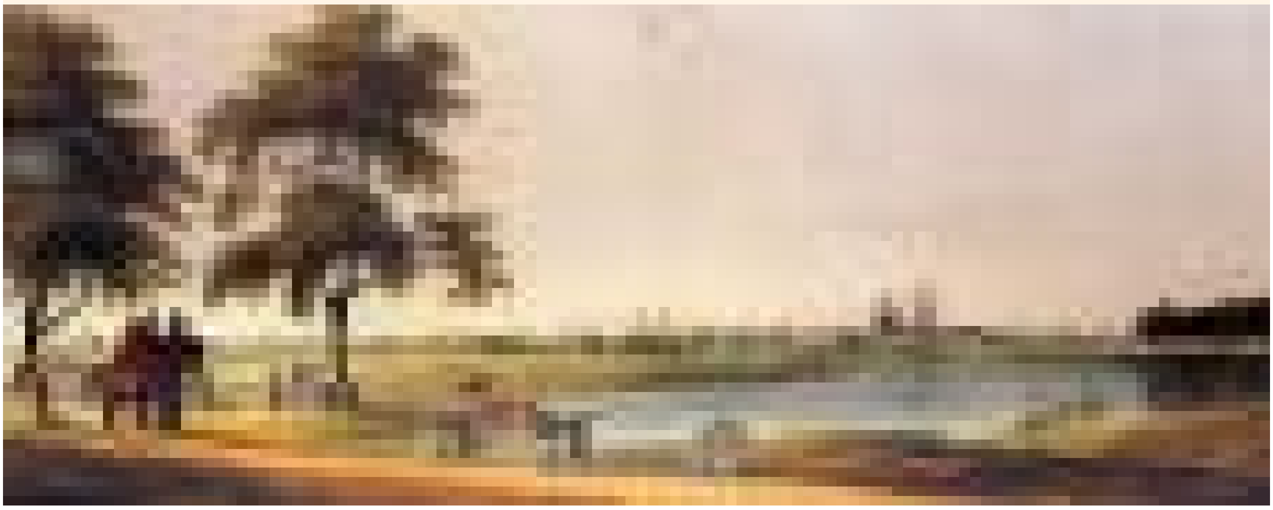

चित्र 12.17
ब्लैक टाउन, मद्रास का एक हिस्सा, टॉमस एवं विलियम डेनियल द्वारा चित्रित, ओरिएंटल सीनरी में प्रकाशित डेनियल के एक रेखाचित्र पर आधारित, 1798
पुराने ब्लैक टाउन को ढहाकर यह खुला मैदान तैयार किया गया था। मूल रूप से इसे गोलीबारी में सुविधा के लिए साफ़ किया गया था लेकिन बाद में हरे मैदान के रूप में छोड़ दिया गया। क्षितिज पर आप किले से दूर विकसित हो रहे नए ब्लैक टाउन की झलक देख सकते हैं।

नया ब्लैक टाउन परंपरागत भारतीय शहरों जैसा था। वहाँ मंदिर और बाज़ार के इर्द-गिर्द रिहाइशी मकान बनाए गये थे। शहर के बीच से गुज़रने वाली आड़ी-टेढ़ी संकरी गलियों में अलग-अलग जातियों के मोहल्ले थे। चिन्ताद्रीपेठ इलाक़ा केवल बुनकरों के लिए था। वाशरमेनपेट में रंगसाज़ और धोबी रहते थे। रोयापुरम में ईसाई मल्लाह रहते थे जो कंपनी के लिए काम करते थे।

पेठ एक तमिल शब्द है जिसका मतलब होता है बस्ती, जबकि *पुरम* शब्द गाँव के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

मद्रास को बहुत सारे गाँवों को मिला कर विकसित किया गया था। यहाँ विविध समुदायों के लिए अवसरों और स्थानों का प्रबंध था। नाना प्रकार के आर्थिक कार्य करने वाले कई समुदाय आए और मद्रास में ही बस गए। *दुबाश* ऐसे भारतीय लोग थे जो स्थानीय भाषा और अंग्रेज़ी, दोनों को बोलना जानते थे। वे एजेंट और व्यापारी के रूप में काम करते थे और भारतीय समाज व गोरों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे। वे संपत्ति इकट्ठा करने के लिए सरकार में अपनी पहुँच का इस्तेमाल करते थे। ब्लैक टाउन में परोपकारी कार्यों और मंदिरों को संरक्षण प्रदान करने से समाज में उनकी शक्तिशाली स्थिति स्थापित होती थी।

शुरुआत में कंपनी के तहत नौकरी पाने वालों में लगभग सारे वेल्लालार होते थे। यह एक स्थानीय ग्रामीण जाति थी जिसने ब्रिटिश शासन के कारण मिले नए मौकों का बढ़िया फायदा उठाया। उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार से ब्राह्मण भी शासकीय महकमों में इसी तरह के पदों के लिए ज़ोर लगाने लगे। तेलुगू कोमाटी समुदाय एक ताकतवर व्यावसायिक समूह था जिसका शहर के अनाज व्यवसाय पर नियंत्रण था। अठाहरवीं सदी से गुजराती बैंकर भी यहाँ मौजूद थे। पेरियार और वन्नियार गरीब कामगार वर्ग में ज़्यादा थे। आरकोट के नवाब पास ही स्थित ट्रिप्लीकेन में जा बसे थे जो एक अच्छी-ख़ासी मुस्लिम आबादी का केंद्र बन गया। इससे पहले माइलापुर और ट्रिप्लीकेन हिंदू धार्मिक केंद्र थे जहाँ अनेक ब्राह्मणों को भरण-पोषण मिलता था। सान थोम और वहाँ का गिरजा रोमन कैथलिक समुदाय का केंद्र था। ये सभी बस्तियाँ मद्रास शहर का हिस्सा बन गईं। इस प्रकार, बहुत सारे गाँवों को मिला लेने से मद्रास दूर तक फैली अल्प सघन आबादी वाला शहर बन गया। इस बात पर यूरोपीय यात्रियों का भी ध्यान गया और सरकारी अफ़सरों ने भी उस पर टिप्पणी की।

चित्र 12.18
पूनामाली रोड पर बना एक गार्डन हाउस

जैसे-जैसे अंग्रेज़ों की सत्ता मज़बूत होती गई, यूरोपीय निवासी क़िले से बाहर जाने लगे। गार्डन हाउसेज़ (बगीचों वाले मकान) सबसे पहले माउंट रोड और पूनामाली

स्रोत 3

एक देहाती शहर?

मद्रास के बारे में *इम्पीरियल गज़ेटियर, 1908* में छपे इस अंश को पढ़िए :

> ... बेहतर यूरोपीय आवास परिसरों के बीच बनाए जाते हैं जिससे उनकी छवि लगभग पार्क जैसी बन जाती है : और इनके बीच तकरीबन गाँवों की तर्ज पर चावल के खेत आते-जाते रहते हैं। यहाँ तक कि ब्लैक टाउन और ट्रिप्लीकेन जैसी सबसे घनी आबादी वाली देशी बस्तियों में भी वैसी भीड़-भाड़ नहीं दिखती जैसी बहुत सारी दूसरे शहरों में दिखाई देती है...।

➲ रिपोर्टों में लिखी बातों से अकसर रिपोर्ट लिखने वाले के विचारों का पता चलता है। उपरोक्त वक्तव्य में लिखने वाला व्यक्ति किस तरह के शहरी भूदृश्य को बेहतर मानता है और वह किस तरह की बसावट को हेय दृष्टि से देख रहा है? क्या आप इन विचारों से सहमत हैं?

रोड, इन दो सड़कों पर बनने शुरू हुए। ये क़िले से छावनी तक जाने वाली सड़कें थीं। इस दौरान संपन्न भारतीय भी अंग्रेज़ों की तरह रहने लगे थे। परिणामस्वरूप मद्रास के इर्द-गिर्द स्थित गाँवों की जगह बहुत सारे नए उपशहरी इलाक़ों ने ले ली। यह इसलिए संभव था क्योंकि संपन्न लोग परिवहन सुविधाओं की लागत वहन कर सकते थे। गरीब लोग अपने काम की जगह से नजदीक पड़ने वाले गाँवों में बस गए। मद्रास के बढ़ते शहरीकरण का परिणाम यह था कि इन गाँवों के बीच वाले इलाक़े शहर के भीतर आ गए। इस तरह मद्रास एक अर्धग्रामीण सा शहर दिखने लगा।

4.2 कलकत्ता में नगर नियोजन

आधुनिक नगर नियोजन की शुरुआत औपनिवेशिक शहरों से हुई। इस प्रक्रिया में भूमि उपयोग और भवन निर्माण के नियमन के ज़रिए शहर के स्वरूप को परिभाषित किया गया। इसका एक मतलब यह था कि शहरों में लोगों के जीवन को सरकार ने नियंत्रित करना शुरू कर दिया था। इसके लिए एक योजना तैयार करना और पूरी शहरी परिधि का स्वरूप तैयार करना ज़रूरी था। यह प्रक्रिया अकसर इस सोच से प्रेरित होती थी कि शहर कैसा दिखना चाहिए और उसे कैसे विकसित किया जाएगा। इस बात का भी ध्यान रखा जाता था कि विभिन्न स्थानों को कैसे व्यवस्थित करना चाहिए। इस दृष्टि से "विकास" की सोच और विचारधारा प्रतिबिम्बित होती थी और उसका क्रियान्वयन ज़मीन, उसके बाशिंदों और संसाधनों पर नियंत्रण के ज़रिए किया जाता था।

इसकी कई वजह थीं कि अंग्रेज़ों ने बंगाल में अपने शासन के शुरू से ही नगर नियोजन का कार्यभार अपने हाथों में क्यों ले लिया था। एक फ़ौरी वजह तो रक्षा उद्देश्यों से संबंधित थी। 1756 में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने कलकत्ता पर हमला किया और अंग्रेज़ व्यापारियों द्वारा माल गोदाम के तौर पर बनाए गए छोटे किले पर क़ब्ज़ा कर लिया। ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारी नवाब की संप्रभुता पर लगातार सवाल उठा रहे थे। वे न तो कस्टम ड्यूटी चुकाना चाहते थे और न ही नवाब द्वारा तय की गई कारोबार की शर्तों पर काम करना चाहते थे। सिराजुद्दौला अपनी ताकत का लोहा मनवाना चाहता था।

कुछ समय बाद, 1757 में प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की हार हुई। इसके बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक ऐसा नया किला बनाने का फ़ैसला लिया जिस पर आसानी से हमला न किया जा सके। कलकत्ता को सुतानाती, कोलकाता और गोविंदपुर, इन तीन गाँवों को मिला कर बनाया गया था। कंपनी ने इन तीनों में सबसे दक्षिण में पड़ने वाले गोविंदपुर गाँव की ज़मीन को साफ करने के लिए वहाँ के व्यापारियों और बुनकरों को हटने का आदेश जारी कर दिया। नवनिर्मित फ़ोर्ट

विलियम के इर्द–गिर्द एक विशाल जगह खाली छोड़ दी गई जिसे स्थानीय लोग मैदान या *गारेर–मठ* कहने लगे थे। खाली मैदान रखने का मकसद यह था कि अगर दुश्मन की सेना क़िले की तरफ़ बढ़े तो उस पर क़िले से बेरोक–टोक गोलीबारी की जा सके। जब अंग्रेज़ों को कलकत्ता में अपनी उपस्थिति स्थायी दिखाई देने लगी तो वे फ़ोर्ट से बाहर मैदान के किनारे पर भी आवासीय इमारतें बनाने लगे। कलकत्ता में अंग्रेज़ों की बस्तियाँ इसी तरह अस्तित्व में आनी शुरू हुईं। फ़ोर्ट के इर्द–गिर्द की विशाल खुली जगह (जो अभी भी मौजूद है) यहाँ की एक पहचान बन गई। यह कलकत्ता में नगर–नियोजन की दृष्टि से पहला उल्लेखनीय काम था।

कलकत्ता में नगर–नियोजन का इतिहास केवल फ़ोर्ट विलियम और मैदान के निर्माण के साथ पूरा होने वाला नहीं था। 1798 में लॉर्ड वेलेज़्ली गवर्नर जनरल बने। उन्होंने कलकत्ता में अपने लिए गवर्नमेंट हाउस के नाम से एक महल बनवाया। यह इमारत अंग्रेज़ों की सत्ता का प्रतीक थी। कलकत्ता में आ जमने के बाद वेलेज़्ली शहर के हिन्दुस्तानी आबादी वाले हिस्से की भीड़–भाड़, ज़रूरत से ज़्यादा हरियाली, गंदे तालाबों, सड़ांध और निकासी की ख़स्ता हालत को देखकर परेशान हो उठा। अंग्रेज़ों को इन चीज़ों से इसलिए परेशानी थी क्योंकि उनका मानना था कि दलदली ज़मीन और ठहरे हुए पानी के तालाबों से ज़हरीली गैसें निकलती हैं जिनसे बीमारियाँ फैलती हैं। उष्णकटिबंधीय जलवायु को वैसे भी स्वास्थ्य के

गोलाबारी के लिए जगह

कलकत्ता के लिए जो पैटर्न तैयार किया गया था उसे बहुत सारे दूसरे शहरों में दोहराया गया। 1857 के विद्रोह के दौरान बहुत सारे शहर विद्रोहियों के गढ़ बन गए थे। विद्रोह के बाद अंग्रेज़ इन स्थानों को अपने लिए सुरक्षित बनाने लगे। उदाहरण के लिए, उन्होंने दिल्ली में लाल क़िले पर कब्ज़ा किया और वहाँ अपनी सैना तैनात कर दी। उन्होंने किले के नज़दीक बनी इमारतों को साफ़ करके भारतीय मोहल्लों और क़िले के बीच काफ़ी फ़ासला बना दिया। इस कारगुज़ारी के पीछे भी दलील वही थी जो 100 साल पहले कलकत्ता में दी गई थी। अगर कभी शहर के लोग दोबारा फ़िरंगी राज के खिलाफ खड़े हो जाएँ तो उन पर गोली चलाने के लिए खुली जगह ज़रूरी थी।

चित्र 12.19
गवर्नमेंट हाउस, कलकत्ता, चार्ल्स डी. ऑइली, 1848
गवर्नर जनरल का निवास गवर्नमेंट हाउस में हुआ करता था जिसे वेलेज़्ली ने ब्रिटिश राज की भव्यता के प्रतीक के रूप में बनवाया था।

चित्र 12.20
कलकत्ता में चितपुर रोड की तरफ़ जाते हुए रास्ते में पड़ने वाला एक बाज़ार
शहर के स्थानीय समुदायों के लिए बाज़ार व्यावसायिक और सामाजिक, दोनों तरह के विनिमय का स्थान था। यूरोप के लोग बाज़ार को देखकर आकर्षित भी होते थे लेकिन उसे भीड़ भरा और गंदा भी मानते थे।

लिए हानिकारक और शक्ति का क्षय करने वाला माना जाता था। शहर को ज़्यादा स्वास्थ्यपरक बनाने का एक तरीका यह ढूँढ़ा गया कि शहर में खुले स्थान छोड़े जाएँ। वेलेज़्ली ने 1803 में नगर-नियोजन की आवश्यकता पर एक प्रशासकीय आदेश जारी किया और इस विषय में कई कमेटियों का गठन किया। बहुत सारे बाज़ारों, घाटों, कब्रिस्तानों और चर्मशोधन इकाइयों को साफ़ किया गया या हटा दिया गया। इसके बाद "जनस्वास्थ्य" एक ऐसा विचार बन गया जिसकी शहरों की सफ़ाई और नगर-नियोजन परियोजनाओं में बार-बार दुहाई दी जाने लगी।

वेलेज़्ली की विदाई के बाद नगर-नियोजन का काम सरकार की मदद से लॉटरी कमेटी (1817) ने जारी रखा। लॉटरी कमेटी का यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि नगर सुधार के लिए पैसे की व्यवस्था जनता के बीच लॉटरी बेचकर ही की जाती थी। इसका मतलब है कि उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दशकों तक शहर के विकास के लिए पैसे की व्यवस्था करना अभी भी केवल सरकार की नहीं बल्कि संवेदनशील नागरिकों की ज़िम्मेदारी ही माना जाता था। लॉटरी कमेटी ने शहर का एक नया नक़्शा बनवाया जिससे कलकत्ता की एक मुकम्मल तसवीर सामने आ सके। कमेटी की प्रमुख गतिविधियों में शहर के हिंदुस्तानी आबादी वाले हिस्से में सड़क-निर्माण और नदी किनारे से "अवैध क़ब्ज़े" हटाना शामिल था। शहर के भारतीय हिस्से को साफ़-सुथरा बनाने की मुहिम में कमेटी ने बहुत सारी झोंपड़ियों को साफ़ कर दिया और मेहनतकश ग़रीबों को वहाँ से बाहर निकाल दिया। उन्हें कलकत्ता के बाहरी किनारे पर जगह दी गई।

अगले कुछ दशकों में महामारी की आशंका से नगर-नियोजन की अवधारणा को और बल मिला। 1817 में हैजा फैलने लगा और 1896 में प्लेग ने शहर को अपनी चपेट में ले लिया। चिकित्सा विज्ञान अभी इन बीमारियों की वजह स्पष्ट नहीं कर पाया था। सरकार ने उस समय के स्वीकृत

स्रोत 4

"हर तरह की गड़बड़ियों को नियंत्रित करने के लिए"

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में अंग्रेज़ों को यह महसूस होने लगा कि सामाजिक जीवन के सभी आयामों को नियंत्रित करने के लिए स्थायी और सार्वजनिक नियम बनाना जरूरी है। यहाँ तक कि निजी इमारतों और सार्वजनिक सड़कों का निर्माण भी स्पष्ट रूप से संहिताबद्ध मानक नियमों के अनुसार होना आवश्यक था। वेलेज़्ली ने कलकत्ता मिनट्स (1803) में लिखा था :

> यह सरकार की बुनियादी ज़िम्मेदारी है कि वह इस विशाल शहर में सड़कों, नालियों और जलमार्गों में सुधार की एक समग्र व्यवस्था बनाकर तथा मकानों व सार्वजनिक भवनों के निर्माण व प्रसार के बारे में स्थायी नियम बनाकर और हर तरह की गड़बड़ियों को नियंत्रित करने के स्थायी नियम बनाकर यहाँ के निवासियों को स्वास्थ्य, सुरक्षा और सुविधा उपलब्ध कराए।

सिद्धांत – जीवन परिस्थितियों और बीमारियों के फैलाव के बीच सीधा संबंध होता है – के अनुसार कार्रवाई की। इस सोच को द्वारकानाथ टैगोर और रूस्तमजी कोवासजी जैसे शहर के जाने-माने हिंदुस्तानियों का समर्थन हासिल था। उन लोगों का मानना था कि कलकत्ता को और ज़्यादा स्वास्थ्यकर बनाना ज़रूरी है। घनी आबादी वाले इलाक़ों को अस्वच्छ माना जाता था क्योंकि वहाँ सूरज की रोशनी सीधे नहीं आ पाती थी और हवा निकासी का इन्तज़ाम नहीं था। इसीलिए कामकाजी लोगों की झोंपड़ियों या "बस्तियों" को निशाना बनाया गया। उन्हें तेज़ी से हटाया जाने लगा। मज़दूर, फेरी वाले, कारीगर और बेरोज़गार, यानी शहर के ग़रीबों को एक बार फिर दूर वाले इलाक़ों में ढकेल दिया गया। बार-बार आग लगने से भी निर्माण नियमन में सख़्ती की ज़रूरत दिखाई दे रही थी। उदाहरण के लिए, 1836 में इसी आशंका के चलते फूँस की झोंपड़ियों को अवैध घोषित कर दिया गया और मकानों में ईंटों की छत को अनिवार्य बना दिया गया।

उन्नीसवीं सदी आते-आते शहर में सरकारी दखलंदाज़ी और ज़्यादा सख़्त हो चुकी थी। वो ज़माना लद चुका था जब नगर-नियोजन को सरकार और निवासियों, दोनों की साझा ज़िम्मेदारी माना जाता था। वित्तपोषण (फंडिग) सहित नगर-नियोजन के सारे आयामों को सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। इस आधार पर और ज़्यादा तेज़ी से झुग्गियों को हटाया जाने लगा और दूसरे इलाक़ों की कीमत पर ब्रिटिश आबादी वाले हिस्सों को तेज़ी से विकसित किया जाने लगा। "स्वाथ्यकर" और "अस्वास्थ्यकर" के नए विभेद के सहारे "व्हाइट" और "ब्लैक" टाउन वाले नस्ली विभाजन को और बल मिला। नगर निगम में मौजूद भारतीय नुमाइंदों ने शहर के यूरोपीय आबादी वाले इलाक़ों के विकास पर ज़रूरत से ज़्यादा ध्यान दिए जाने का विरोध किया। इन सरकारी नीतियों के विरुद्ध जनता के प्रतिरोध ने भारतीयों के भीतर उपनिवेशवाद विरोधी और राष्ट्रवादी भावनाओं को बढ़ावा दिया।

➲ वेलेज़्ली ने सरकार की ज़िम्मेदारी को किस तरह परिभाषित किया है। इस भाग को पढ़िए और चर्चा कीजिए कि इन विचारों को लागू किया जाता तो उनसे शहर में रहने वाले भारतीयों पर क्या असर पड़ता।

बस्ती (बंगला और हिंदी) का मतलब मूल रूप से मोहल्ला या बसावट हुआ करता था। लेकिन अंग्रेज़ों ने इस शब्द का अर्थ संकुचित कर दिया और उसे गरीबों की कच्ची झोंपड़ियों के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा। उन्नीसवीं सदी के आख़िर में ब्रिटिश दस्तावेज़ों में "बस्तियों" को गंदी झोंपड़पट्टियों के रूप में पेश किया जाने लगा।

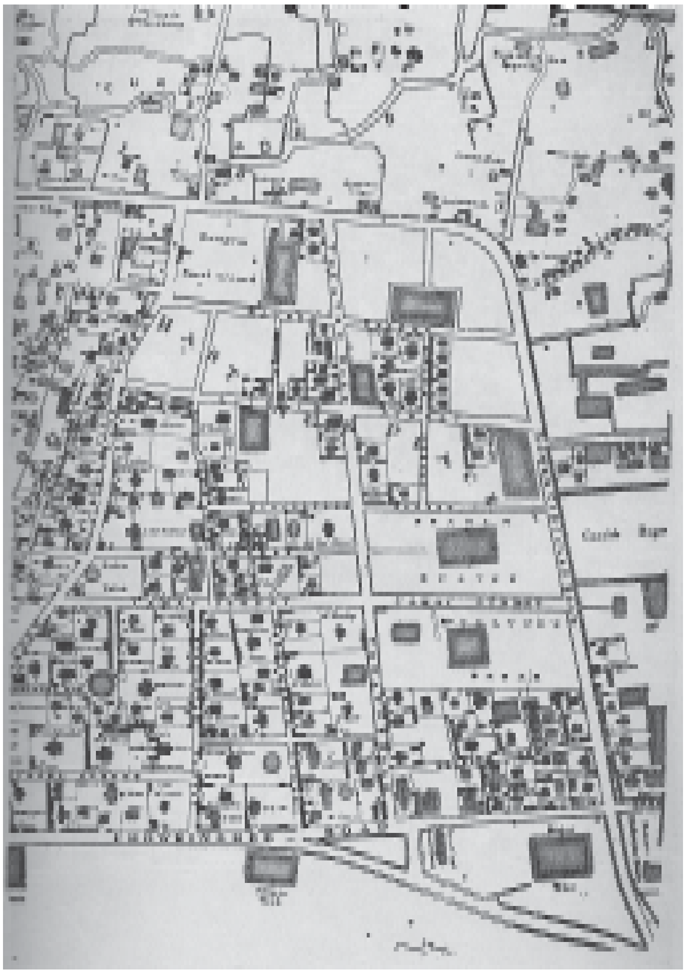

चित्र 12.21
लॉटरी कमेटी सुधारों के बाद कलकत्ता में यूरोपीय टाउन का एक भाग
यहाँ आप विशाल परिसरों में यूरोपीय मकान देख सकते हैं। जे.ए. शाल्च द्वारा बनाई गई योजना से (1825)।

चित्र 12.22
कलकत्ता की एक बस्ती

जैसे-जैसे ब्रिटिश साम्राज्य फैला, अंग्रेज़ कलकत्ता, बम्बई और मद्रास जैसे शहरों को शानदार शाही राजधानियों में तब्दील करने की कोशिश करने लगे। उनकी सोच से ऐसा लगता था मानो शहरों की भव्यता से ही शाही सत्ता की ताकत प्रतिबिंबित होती है। आधुनिक नगर-नियोजन में ऐसी हर चीज़ को शामिल किया गया जिसके प्रति अंग्रेज़ अपनेपन का दावा करते थे : तर्कसंगत क्रम-व्यवस्था, सटीक क्रियान्वयन, पश्चिमी सौंदर्यात्मक आदर्श। शहरों का साफ़ और व्यवस्थित, नियोजित और सुंदर होना ज़रूरी था।

4.3 बम्बई में भवन निर्माण

यदि इस शाही दृष्टि को साकार करने का एक तरीका नगर-नियाजन था तो दूसरा तरीका यह था कि शहरों में भव्य इमारतों के मोती टाँक दिए जाएँ। शहरों में बनने वाली इमारतों में क़िले, सरकारी दफ़्तर, शैक्षणिक संस्थान, धार्मिक इमारतें, स्मारकीय मीनारें, व्यावसायिक डिपो, यहाँ तक कि गोदियाँ और पुल, कुछ भी हो सकता था। बुनियादी तौर पर ये इमारतें रक्षा, प्रशासन और वाणिज्य जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती थीं, लेकिन ये साधारण इमारतें नहीं थीं। अकसर ये इमारतें शाही सत्ता, राष्ट्रवाद और धार्मिक वैभव जैसे विचारों का प्रतिनिधित्व भी करती थीं। आइए देखें कि बम्बई में इस सोच को अमली जामा किस तरह पहनाया गया।

शुरुआत में बम्बई सात टापुओं का इलाका था। जैसे-जैसे आबादी बढ़ी, इन टापुओं को एक-दूसरे से जोड़ दिया गया ताकि ज़्यादा जगह पैदा की जा सके। इस तरह आख़िरकार ये टापू एक-दूसरे से जुड़ गए और एक विशाल शहर अस्तित्व में आया। बम्बई औपनिवेशिक भारत की वाणिज्यिक राजधानी थी। पश्चिमी तट पर एक प्रमुख बंदरगाह होने के नाते यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का केंद्र था। उन्नीसवीं सदी के अंत तक भारत का आधा निर्यात और आयात बम्बई से ही होता था। इस व्यापार की एक महत्त्वपूर्ण वस्तु अफ़ीम थी। ईस्ट इंडिया कंपनी यहाँ से चीन को अफीम का निर्यात करती थी। भारतीय व्यापारी और बिचौलिये इस व्यापार में हिस्सेदार थे और उन्होंने बम्बई की अर्थव्यवस्था को मालवा, राजस्थान और सिंध जैसे अफीम उत्पादक इलाकों से जोड़ने में मदद दी। कंपनी के साथ यह गठजोड़ उनके लिए मुनाफे का सौदा था और इससे भारतीय पूँजीपति वर्ग का विकास हुआ। बम्बई के पूँजीपति वर्ग में पारसी, मारवाड़ी, कोंकणी मुसलमान, गुजराती बनिये, बोहरा, यहूदी और आर्मीनियाई, विभिन्न समुदायों के लोग शामिल थे।

जैसा कि आपने पीछे पढ़ा है (अध्याय 10), जब 1861 में अमेरिकी गृह युद्ध शुरू हुआ तो अमेरिका के दक्षिणी भाग से आने वाली कपास अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में आना बंद हो गई। इससे भारतीय कपास की माँग पैदा

हुई जिसकी खेती मुख्य रूप से दक्कन में की जाती थी। भारतीय व्यापारियों और बिचौलियों के लिए यह बेहिसाब मुनाफ़े का मौका था। 1869 में स्वेज़ नहर को खोला गया जिससे विश्व अर्थव्यवस्था के साथ बम्बई के संबंध और मज़बूत हुए। बम्बई सरकार और भारतीय व्यापारियों ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए बम्बई को *Urbs prima in Indis* यानी *भारत का सरताज शहर* घोषित कर दिया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक बम्बई में भारतीय व्यापारी कॉटन मिल जैसे नए उद्योगों में अपना पैसा लगा रहे थे। निर्माण गतिविधियों में भी उनका काफ़ी दख़ल रहता था।

जैसे-जैसे बम्बई की अर्थव्यवस्था फैली, उन्नीसवीं सदी के मध्य से रेलवे और जहाज़रानी के विस्तार तथा प्रशासकीय संरचना विकसित करने की ज़रूरत भी पैदा होने लगी। उस समय बहुत सारी नयी इमारतें बनाई गईं। इन इमारतों में शासकों की संस्कृति और आत्मविश्वास झलकता था। इनकी स्थापत्य या वास्तु शैली यूरोपीय शैली पर आधारित थी। यूरोपीय शैलियों के इस आयात में शाही दृष्टि कई तरह से दिखाई देती थी। पहली बात, इसमें एक अजनबी देश में जाना-पहचाना सा भूदृश्य रचने की और उपनिवेश में भी घर जैसा महसूस करने की अंग्रेज़ों की चाह प्रतिबिंबित होती है। दूसरा, अंग्रेज़ों को लगता था कि यूरोपीय शैली उनकी श्रेष्ठता, अधिकार और सत्ता का प्रतीक होगी। तीसरा, वे सोचते थे कि यूरोपीय ढंग की दिखने वाली इमारतों से औपनिवेशिक स्वामियों और भारतीय प्रजा के बीच फ़र्क़ और फ़ासला साफ़ दिखने लगेगा।

शुरुआत में ये इमारतें परंपरागत भारतीय इमारतों के मुक़ाबले अजीब सी दिखाई देती थीं। लेकिन धीरे-धीरे भारतीय भी यूरोपीय स्थापत्य शैली के आदि हो गए और उन्होंने इसे अपना लिया। दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ों ने अपनी ज़रूरतों के मुताबिक कुछ भारतीय शैलियों को अपना लिया। इसकी एक मिसाल उन बंगलों को माना जा सकता है जिन्हें बम्बई और पूरे देश में सरकारी अफ़सरों के लिए बनाया जाता था। इनके लिए अंग्रेज़ी का Bunglow शब्द बंगाल के 'बंगला' शब्द से निकला है जो एक परंपरागत फूँस की बनी झोंपड़ी होती थी। अंग्रेज़ों ने उसे अपनी ज़रूरतों के हिसाब से बदल लिया था। औपनिवेशिक बंगला एक बड़ी ज़मीन पर बना होता था। उसमें रहने वालों को न केवल प्राइवेसी मिलती थी बल्कि उनके और भारतीय जगत के बीच फ़ासला भी स्पष्ट हो जाता था। परंपरागत ढलवाँ छत और चारों तरफ़ बना बरामदा बंगले को ठंडा रखता था। बंगले के परिसर में घरेलू नौकरों के लिए अलग से क्वार्टर होते थे। सिविल लाइन्स में बने इस तरह के बंगले एक ख़ालिस नस्ली गढ़ बन गए थे जिनमें

चित्र 12.23
बम्बई का एक बंगला, उन्नीसवीं शताब्दी

चित्र 12.24
बम्बई का टाउन हॉल जिसमें अब ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बॉम्बे का दफ़्तर है।

बीसवीं सदी की शुरुआत से ही बंगलों में ढलवाँ छतों (Pitched Roof) का चलन कम होने लगा था हालाँकि मकानों की सामान्य योजना में कोई बदलाव नहीं आया था।

शासक वर्ग भारतीयों के साथ रोज़ाना सामाजिक संबंधों के बिना आत्मनिर्भर जीवन जी सकते थे।

सार्वजनिक भवनों के लिए मौटे तौर पर तीन स्थापत्य शैलियों का प्रयोग किया गया। दो शैलियाँ उस समय इंग्लैंड में प्रचलित चलन से आयातित थीं। इनमें से एक शैली को नवशास्त्रीय या नियोक्लासिकल शैली कहा जाता था। बड़े-बड़े स्तंभों के पीछे रेखागणितीय संरचनाओं का निर्माण इस शैली की विशेषता थी। यह शैली मूल रूप से प्राचीन रोम की भवन निर्माण शैली से निकली थी जिसे यूरोपीय पुनर्जागरण के दौरान पुनर्जीवित, संशोधित और लोकप्रिय किया गया। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के लिए उसे ख़ास तौर से अनुकूल माना जाता था। अंग्रेज़ों को लगता था कि जिस शैली में शाही रोम की भव्यता दिखाई देती थी उसे शाही भारत के वैभव की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। इस स्थापत्य शैली के भूमध्यसागरीय उद्‌गम के कारण उसे उष्णकटिबंधीय मौसम के अनुकूल भी माना गया। 1833 में बम्बई का टाउन हॉल (चित्र 12.16) इसी शैली के अनुसार बनाया गया था। 1860 के दशक में सूती कपड़ा उद्योग की तेजी के समय बनाई गयी बहुत सारी व्यावसायिक इमारतों के समूह को एल्फ़िंस्टन सर्कल कहा जाता था। बाद में इसका नाम बदलकर हॉर्निमान सर्कल रख दिया गया था। यह नाम भारतीय राष्ट्रवादियों की हिमायत करने वाले एक अंग्रेज़ संपादक के नाम पर पड़ा था। यह इमारत इटली की इमारतों से प्रेरित थी। इसमें पहली मंज़िल पर ढके हुए तोरणपथ (Arcade) का रचनात्मक ढंग से इस्तेमाल किया गया। दुकानदारों व पैदल चलने वालों को तेज़ धूप और बरसात से बचाने के लिए यह सुध ार काफ़ी उपयोगी था।

चित्र 12.25
ऐल्फिंस्टन सर्कल
यहाँ आप ग्रीको-रोमन स्थापत्य शैली से प्रभावित स्तंभों और मेहराबों को देखिए।

एक और शैली जिसका काफ़ी इस्तेमाल किया गया वह नव–गॉथिक शैली थी। ऊँची उठी हुई छतें, नोकदार मेहराबें और बारीक साज–सज्जा इस शैली की खासियत होती है। गॉथिक शैली का जन्म इमारतों, ख़ासतौर से गिरजों से हुआ था जो मध्यकाल में उत्तरी यूरोप में काफ़ी बनाए गए। नव–गॉथिक शैली को इंग्लैंड में उन्नीसवीं सदी के मध्य में दोबारा अपनाया गया। यह वही समय था जब बम्बई में सरकार बुनियादी ढाँचे का निर्माण कर रही थी। उसके लिए यही शैली चुनी गई। सचिवालय, बम्बई विश्वविद्यालय और उच्च न्यायालय जैसी कई शानदार इमारतें समुद्र किनारे इसी शैली में बनाई गईं।

इनमें से कुछ इमारतों के लिए भारतीयों ने पैसा दिया था। यूनिवर्सिटी हॉल के लिए सर कोवासजी जहाँगीर रेडीमनी ने पैसा दिया था जो एक अमीर पारसी व्यापारी थे। यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी के घंटाघर का निर्माण प्रेमचंद रॉयचंद के पैसे से किया गया था और इसका नाम उनकी माँ के नाम पर राजाबाई टावर रखा गया था। भारतीय व्यापारियों को नव–गॉथिक शैली इसलिए रास आती थी क्योंकि उनका मानना था कि अंग्रेज़ों द्वारा लाए गए बहुत सारे विचारों की तरह उनकी भवन निर्माण शैलियाँ भी प्रगतिशील थीं और उनके कारण बम्बई को एक आधुनिक शहर बनाने में मदद मिलेगी।

लेकिन नव–गॉथिक शैली का सबसे बेहतरीन उदाहरण विक्टोरिया टर्मिनस है जो ग्रेट इंडियन पेनिन्स्युलर रेलवे कंपनी का स्टेशन और मुख्यालय हुआ करता था। अंग्रेज़ों ने शहरों में रेलवे स्टेशनों के डिज़ाइन और निर्माण में काफ़ी निवेश किया

चित्र 12.26
बम्बई सचिवालय (सेक्रेटेरिएट)
एच. एसटी क्लेयर विलकिन्स द्वारा बनाया गया डिज़ाइन
द *बिल्डर*, 20 नवंबर 1875 से लिया गया रेखाचित्र।

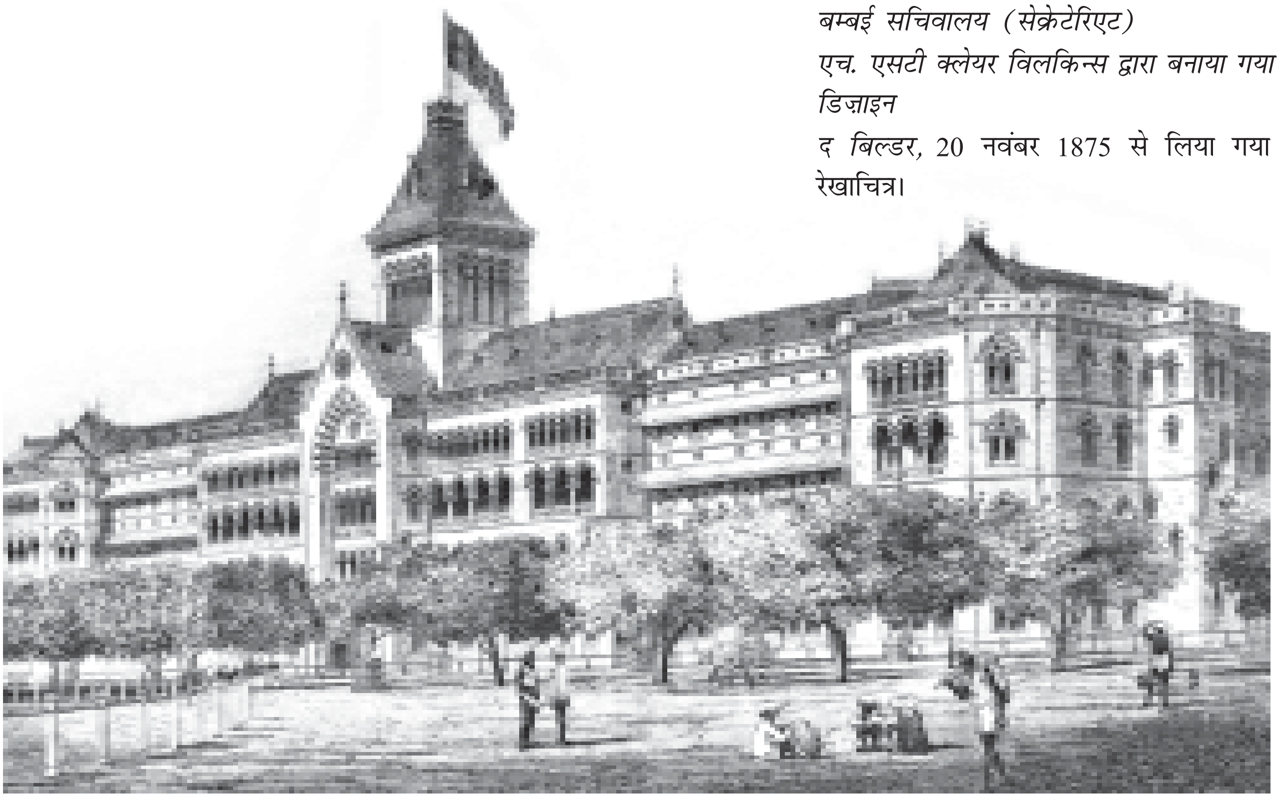

चित्र 12.27
विक्टोरिया टर्मिनस रेलवे स्टेशन, एफ़. डब्ल्यू. स्टीवन्स द्वारा बनाया गया डिज़ाइन

था क्योंकि वे एक अखिल भारतीय रेलवे नेटवर्क के सफल निर्माण को अपनी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानते थे। मध्य बम्बई के आसमान पर इन्हीं इमारतों का दबदबा था और उनकी नव-गॉथिक शैली शहर को एक विशिष्ट चरित्र प्रदान करती थी।

बीसवीं सदी की शुरुआत में एक नयी मिश्रित स्थापत्य शैली विकसित हुई जिसमें भारतीय और यूरोपीय, दोनों तरह की शैलियों के तत्व थे। इस शैली को इंडो-सारासेनिक शैली का नाम दिया गया था। "इंडो" शब्द "हिन्दू" का संक्षिप्त रूप था जबकि "सारासेन" शब्द का यूरोप के लोग मुसलमानों को संबोधित करने के लिए इस्तेमाल करते थे। यहाँ की मध्यकालीन इमारतों - गुम्बदों, छतरियों, जालियों, मेहराबों - से यह शैली काफ़ी प्रभावित थी। सार्वजनिक वास्तु शिल्प में भारतीय शैलियों का समावेश करके अंग्रेज़ यह साबित करना चाहते थे कि वे यहाँ के वैध और स्वाभाविक शासक हैं। राजा जॉर्ज पंचम और उनकी पत्नी मेरी के स्वागत के लिए 1911 में गेटवे ऑफ़ इंडिया बनाया गया। यह परंपरागत गुजराती शैली का प्रसिद्ध उदाहरण है। उद्योगपति जमशेदजी टाटा ने इसी शैली में ताजमहल होटल बनवाया था। यह इमारत न केवल भारतीय उद्यमशीलता का प्रतीक थी बल्कि अंग्रेज़ों के स्वामित्व और नियंत्रण वाले नस्ली क्लबों और होटलों के लिए एक चुनौती भी थी।

चित्र 12.28
मद्रास लॉ कोर्ट्स (1889-1892)
बम्बई में गॉथिक शैली का चलन बढ़ता जा रहा था लेकिन मद्रास में इंडो-सारसेनिक शैली ही ज़्यादा फली-फूली। अदालत की इस इमारत के डिज़ाइन में पठान और गॉथिक, दोनों शैलियों के तत्व दिखाई देते हैं।

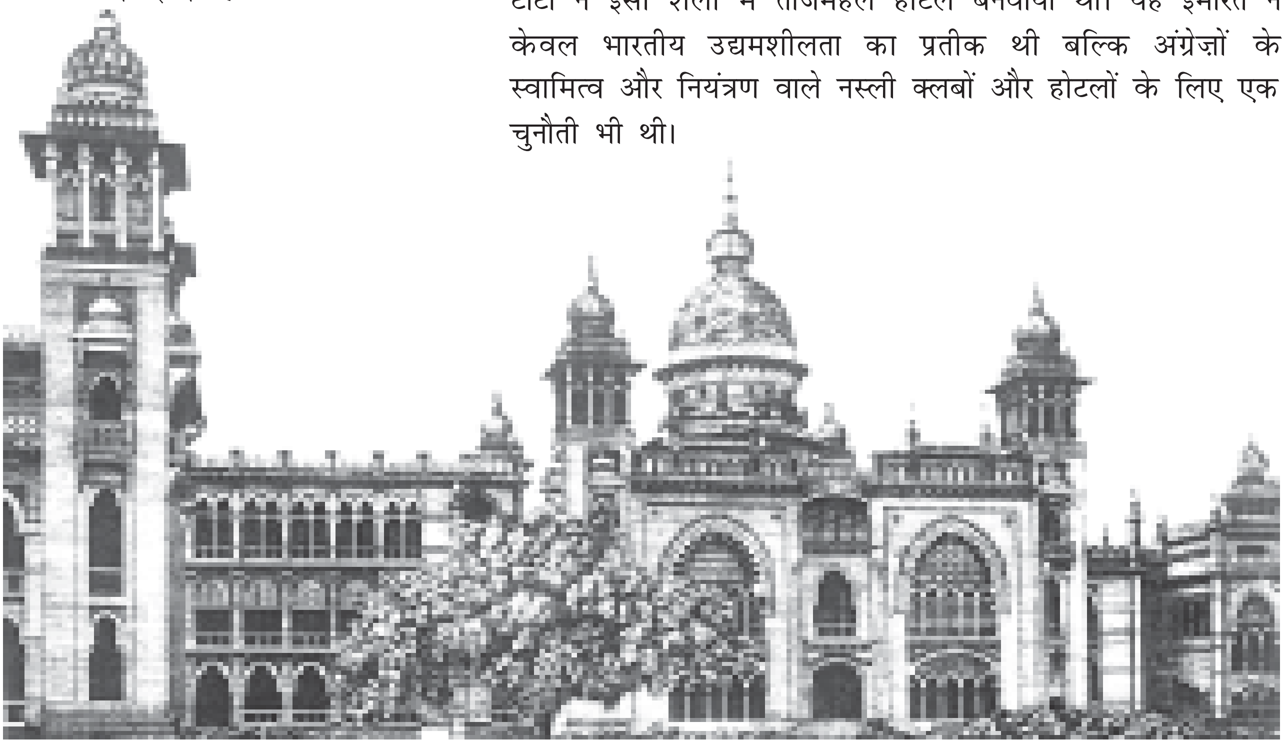

बम्बई के ज़्यादा "भारतीय" इलाकों में सजावट एवं भवन-निर्माण और साज-सज्जा में परंपरागत शैलियों का ही बोलबाला था। शहर में जगह की कमी और भीड़-भाड़ की वजह से बम्बई में ख़ास तरह की इमारतें भी सामने आईं जिन्हें *चॉल* का नाम दिया गया। ये बहुमंज़िला इमारतें होती थीं जिनमें एक-एक कमरे वाली आवासीय इकाइयाँ बनाई जाती थीं। इमारत के सारे कमरों के सामने एक खुला बरामदा या गलियारा होता था और बीच में दालान होता था। इस तरह की इमारतों में बहुत थोड़ी जगह में बहुत सारे परिवार रहते थे जिससे उनमें रहने वालों के बीच मोहल्ले की पहचान और एकजुटता का भाव पैदा हुआ।

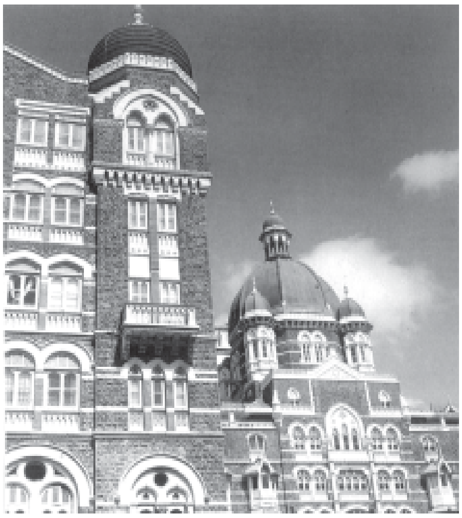

चित्र 12.29
ताजमहल होटल

5. इमारतें और स्थापत्य शैलियाँ क्या बताती हैं?

स्थापत्य शैलियों से अपने समय के सौंदर्यात्मक आदर्शों और उनमें निहित विविधताओं का पता चलता है। लेकिन, जैसा कि हमने देखा, इमारतें उन लोगों की सोच और नज़र के बारे में भी बताती हैं जो उन्हें बना रहे थे। इमारतों के ज़रिए सभी शासक अपनी ताकत का इज़हार करना चाहते हैं। इस प्रकार एक ख़ास वक़्त की स्थापत्य शैली को देखकर हम यह समझ सकते हैं कि उस समय सत्ता को किस तरह देखा जा रहा था और वह इमारतों और उनकी विशिष्टताओं – ईंट-पत्थर, खम्भे और मेहराब, आसमान छूते गुम्बद या उभरी हुई छतें – के ज़रिए किस प्रकार अभिव्यक्त होती थी।

स्थापत्य शैलियों से केवल प्रचलित रुचियों का ही पता नहीं चलता। वे उनको बदलती भी हैं। वे नयी शैलियों को लोकप्रियता प्रदान करती हैं और संस्कृति की रूपरेखा तय करती हैं। जैसा कि हमने देखा, बहुत सारे भारतीय भी यूरोपीय स्थापत्य शैलियों को आधुनिकता व सभ्यता का प्रतीक मानते हुए उन्हें अपनाने लगे थे। लेकिन इस बारे में सबकी राय एक जैसी नहीं थी। बहुत सारे भारतीयों को यूरोपीय आदर्शों से आपत्ति थी और उन्होंने देशी शैलियों को बचाए रखने का प्रयास किया। बहुतों ने पश्चिम के कुछ ऐसे ख़ास तत्वों को अपना लिया जो उन्हें आधुनिक दिखाई देते थे और उन्हें स्थानीय परंपराओं के तत्वों में समाहित कर दिया। उन्नीसवीं सदी के आख़िर से हमें औपनिवेशिक आदर्शों से भिन्न क्षेत्रीय और राष्ट्रीय अभिरुचियों को परिभाषित करने के प्रयास दिखाई देते हैं। इस तरह सांस्कृतिक टकराव की वृहत्तर प्रक्रियाओं के ज़रिए विभिन्न शैलियाँ बदलती और विकसित होती गईं। इसलिए स्थापत्य शैलियों को देखकर हम इस बात को भी समझ सकते हैं कि शाही और राष्ट्रीय, तथा राष्ट्रीय और क्षेत्रीय/स्थानीय के बीच सांस्कृतिक टकराव और राजनीतिक खींचतान किस तरह शक्ल ले रही थी।

चित्र 12.30
बम्बई की एक चॉल

➲ चर्चा कीजिए...

किसी ऐसी ऐतिहासिक इमारत को चुनिए जो आपको बहुत पसंद है। उसकी वास्तुशिल्पीय विशेषताओं की सूची बनाइए और उसकी शैली के बारे में पता कीजिए। विचार कीजिए कि उसके लिए वही ख़ास शैली क्यों चुनी गई।

काल-रेखा

1500-1700	यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ भारत में अपने ठिकाने स्थापित करती हैं। पणजी में पुर्तगाली (1510); मछलीपटनम में डच (1605); मद्रास (1639), बम्बई (1661) और कलकत्ता (1690) में अंग्रेज़ तथा पांडिचेरी (1673) में फ़्रांसीसी अपने ठिकाने बनाते हैं।
1757	प्लासी के युद्ध में अंग्रेज़ों की निर्णायक जीत होती है। वे बंगाल के शासक हो जाते हैं।
1773	ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना
1803	कलकत्ता नगर सुधार पर लॉर्ड वेलेज़्ली द्वारा लिखित मिनट्स
1818	दक्कन पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा, बम्बई को नए प्रांत की राजधानी बनाया जाता है
1853	बम्बई से ठाणे तक रेल लाइन बिछाई जाती है
1857	बम्बई में पहली स्पिनिंग और वीविंग मिल की स्थापना
1857	बम्बई, मद्रास और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों की स्थापना
1870 का दशक	नगर पालिकाओं में निर्वाचित प्रतिनिधियों को शामिल किया जाने लगा
1881	मद्रास हार्बर का निर्माण पूरा हुआ
1896	बम्बई के वाटसन्स होटल में पहली बार फ़िल्म दिखाई गई
1896	बड़े शहरों में प्लेग फैलने लगता है
1911	कलकत्ता की जगह दिल्ली को राजधानी बनाया जाता है

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. औपनिवेशिक शहरों में रिकॉर्ड्स सँभाल कर क्यों रखे जाते थे?
2. औपनिवेशिक संदर्भ में शहरीकरण के रुझानों को समझने के लिए जनगणना संबंधी आंकड़े किस हद तक उपयोगी होते हैं।
3. "व्हाइट" और "ब्लैक" टाउन शब्दों का क्या महत्व था?
4. प्रमुख भारतीय व्यापारियों ने औपनिवेशिक शहरों में खुद को किस तरह स्थापित किया?
5. औपनिवेशिक मद्रास में शहरी और ग्रामीण तत्व किस हद तक घुल-मिल गए थे?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)

6. अठारहवीं सदी में शहरी केंद्रों का रूपांतरण किस तरह हुआ?
7. औपनिवेशिक शहर में सामने आने वाले नए तरह के सार्वजनिक स्थान कौन से थे? उनके क्या उद्देश्य थे?
8. उन्नीसवीं सदी में नगर-नियोजन को प्रभावित करने वाली चिंताएँ कौन सी थीं?
9. नए शहरों में सामाजिक संबंध किस हद तक बदल गए?

मानचित्र कार्य

10. भारत के नक़्शे पर मुख्य नदियों और पर्वत शृंखलाओं को पारदर्शी काग़ज लगा कर रेखांकित करें। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास सहित इस अध्याय में उल्लिखित दस शहरों को चिह्नित कीजिए और उनमें से किन्हीं दो शहरों के बारे में संक्षेप में लिखिए कि उन्नीसवीं सदी के दौरान उनका महत्त्व किस तरह बदल गया (इनमें से एक औपनिवेशिक शहर तथा दूसरा उससे पहले का शहर होना चाहिए)।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. पता लगाइए कि आपके कस्बे या गाँव में स्थानीय प्रशासन कौन सी सेवाएँ प्रदान करता है। क्या जलापूर्ति, आवास, यातायात और स्वास्थ्य एवं स्वच्छता आदि सेवाएँ भी उनके हिस्से में आती हैं? इन सेवाओं के लिए संसाधनों की व्यवस्था कैसे की जाती है? नीतियाँ कैसे बनाई जाती हैं? क्या शहरी मज़दूरों या ग्रामीण इलाक़ों के खेतिहर मज़दूरों के पास नीति-निर्धारण में हस्तक्षेप का अधिकार होता है? क्या उनसे राय ली जाती है? अपने निष्कर्षों के आधार पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।
12. अपने शहर या गाँव में पाँच तरह की इमारतों को चुनिए। प्रत्येक के बारे में पता लगाइए कि उन्हें कब बनाया गया, उनको बनाने का फैसला क्यों लिया गया, उनके लिए संसाधनों की व्यवस्था कैसे की गई, उनके निर्माण का ज़िम्मा किसने उठाया और उनके निर्माण में कितना समय लगा। उन इमारतों के स्थापत्य या वास्तु शैली संबंधी आयामों का वर्णन करिए और औपनिवेशिक स्थापत्य से उनकी समानताओं या भिन्नताओं को चिह्नित कीजिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

सब्यसाची भट्टाचार्य, 1990
आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

नॉर्मा इवेंसन, 1989
दि इंडियन मेट्रोपोलिस : ए व्यू टुवड्र्स द वेस्ट, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

नारायणी गुप्ता, 1981
डेल्ही बिटवीन टू एम्पायर्स 1803-1931, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली

तपन रॉयचौधरी एवं इरफ़ान हबीब द्वारा संपादित *द कैंब्रिज इकॉनमिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (खंड-1), 1984 में गेविन हेम्बली एवं बर्टन स्टीन द्वारा लिखित अध्याय "*टाउन्स ऐण्ड सिटीज़*", ऑरिऐंट लाँगमेन एवं कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

एंथनी किंग, 1976
कॉलोनियल अर्बन डिवेलपमेंट : कल्चर, सोशल पावर एंड एनवारनमेंट, रटलेज एंड किगेन पॉल, लंदन

टॉमस आर. मेटकाफ़, 1989
एन इम्पीरियल विजन : इंडियन आर्किटेक्चर एंड ब्रिटेन्स राज, फ़ेबर एंड फ़ेबर, लंदन

लुईस मम्फ़ोर्ड, 1961
द सिटी इन हिस्ट्री : इट्स ओरिजिन्स, इट्स ट्रांसफॉर्मेशन्स एंड इट्स प्रोस्पैक्ट्स, सेकर एंड वारबुर्ग, लंदन